जन ज्ञान

मासिक

आर्य जनता का प्रतिनिधि प्रकाशन

अपने बलिदान और रक्त की
स्याही से नया इतिहास लिखो

भाषण बहुत दे चुके, प्रस्ताव भी पास कर लिए किन्तु अधर्म की आंधी में इन से काम न चलेगा।

धर्म, सत्य, ज्ञान और मनुष्य की रक्षा जिन्हें इष्ट हो, हम ऐसे बलिदानी वीरों को पुकारते हैं

जो रक्त की स्याही से नया इतिहास लिखने को तैयार हों।

मालाएं बहुत पहन लीं, वीरो! आओ अब जीवन के लिए हम मृत्यु का स्वागत करें। काम करें, कठोर श्रम त्याग और मिटने की भावना से आओ, मेरे भाई! हम ऋषि दयानन्द की राह पर चलें—

—भारतेन्द्रनाथ

मूल्य १)

जून १९७२ : आषाढ़ संवत् २०२९

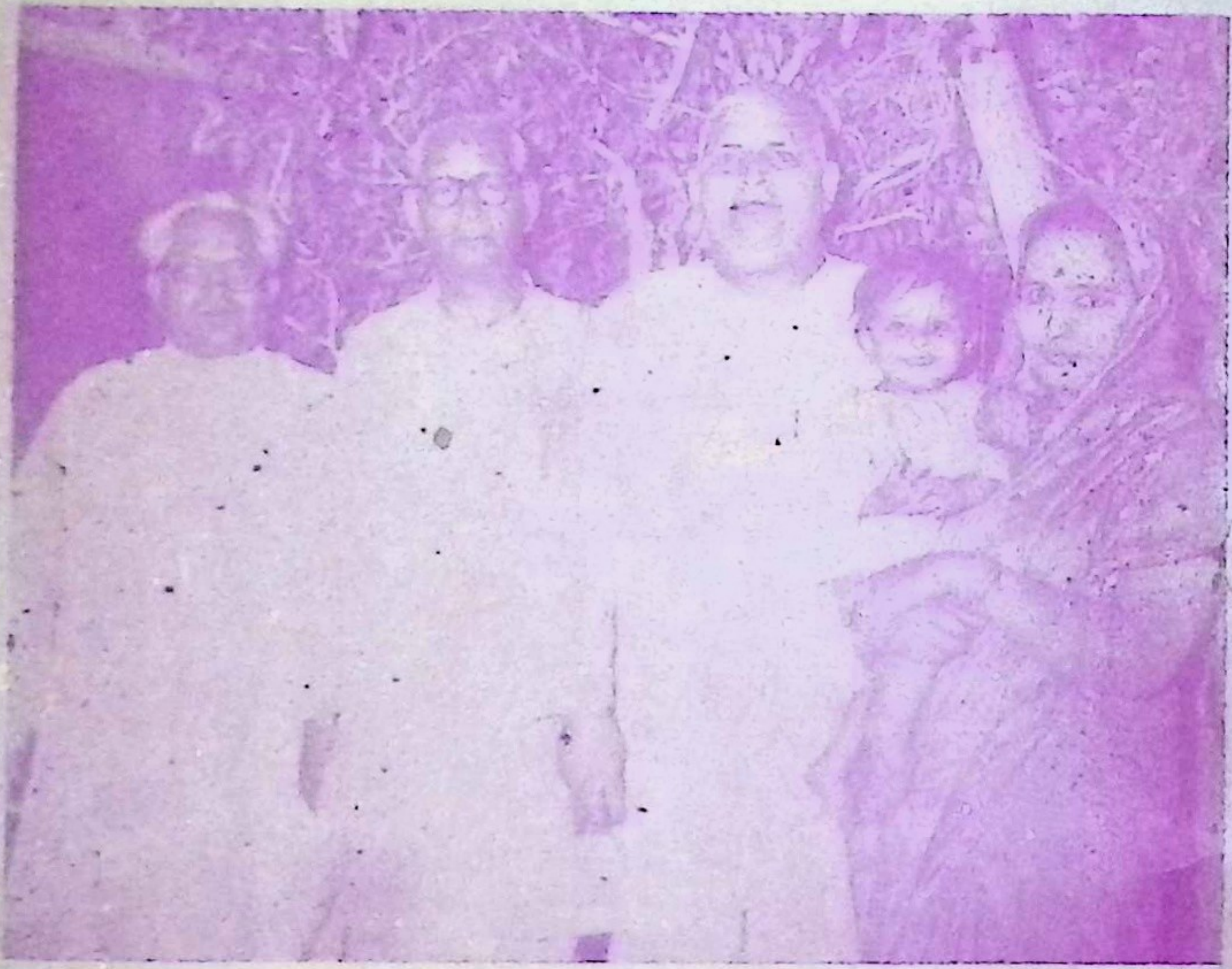

महाविद्यालय ज्वालापुर के उत्सव पर संस्था के उपकुलपति आचार्य श्री वैद्यनाथ जी शास्त्री, प्रधान श्री क्षेमचन्द्र सुमन, दयानन्द संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्र नाथ और जन-ज्ञान संपादक श्रीमती राकेशरानी

★

आर्य जनता का अपना
प्रतिनिधि प्रकाशन

जन-ज्ञान

(मासिक)

सम्पादक—
राकेश रानी

=

दूरभाष : ५६६६३९
पता
१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग
निकट ३१-नाई वाला
करौल बाग, नई दिल्ली-५

=

वार्षिक मूल्य १०)
विदेश में एक पौंड
आजीवन २०१)

=

वर्ष ५ : अंक २

प्रभु पुत्रों से !

हिम्मत न हारो,
हारने से काम नहीं चलेगा,
हारना मृत्यु का प्रतीक है।
इसलिये विजय वरो !
आगे बढ़ो !!

यह सच है कि अंधेरा छाया है,
आशा की किरणें लुप्त हैं,
फिर भी तुम्हें बढ़ना है,
नया युग रचना है।
तुम अपने पर और
अपने प्रभु पर विश्वास रख
आगे बढ़ो !

और किसी से भी न डरो !
धर्म की विजय के लिये,
सत्य का सहारा लो,
सत्य ही मन्त्र और सत्य ही अस्त्र है

सत्य ही अजेय है,
सत्य नहीं तो धर्म नहीं,
धर्म सत्य का विकास है।
प्रभु पुत्र ! सत्य ही जीवन है।
सत्य को धारण कर
आगे बढ़ो !!

—भारतेन्द्रनाथ

पं० धर्मदेव विद्यामार्तंड के परिश्रम का परिणाम

एक अनुपम ग्रन्थ

Christianity and Vedas

वेद और बाइबिल का तुलनात्मक अध्ययन
अब छप कर तैयार है—
गहरायी में पैठ कर कुछ जानने के इच्छुक
मंगाएं और बांटें मूल्य १)५०

स्वामी दयानन्द

तीसरा संस्करण : ४० रंगीन चित्रों सहित

लागत १)५३ = बिक्री मूल्य १००) सैकड़ा
भारी संख्या में मंगाइए

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग नई दिल्ली-५

१ जुलायी १९७२ से

जन-ज्ञान (मासिक) का
वार्षिक शुल्क १२) होगा

किन्तु

जो सदस्य २५ जून १९७२ तक अगले वर्षों का शुल्क अग्रिम जमा कराना चाहेंगे—वे निम्न हिसाव से करा सकेंगे

१—एक वर्ष के लिए अग्रिम	—१०)
२—दो वर्ष के लिए अग्रिम	—१८)
३—तीन वर्ष के लिए अग्रिम	—२५)

और

जीवन भर के लिए केवल १०१)

जुलायी से जन-ज्ञान (मासिक) नए रूप रंग और साज सज्जा से प्रकाशित होगा। इस के विस्तार और प्रचार के लिए नया स्तर आप देखेंगे—

कृपया आगे बढ़ने में सहयोग दीजिए

और

इस के आजीवन सदस्य बनिए

विनीता

राकेश रानी

संपादक

पहले आप

देश व्यक्ति से बनता है। यदि व्यक्ति ठीक नहीं तो देश ठीक नहीं हो सकता। राष्ट्र की उन्नति का अर्थ है व्यक्ति की उन्नति ! व्यक्ति उन्नति करे और अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रह औरों की उन्नति के लिए भी यत्नशील रहे—यहीं तक नहीं—सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझ कार्य करे, तो सारी समस्याएं सुलझ जाएं।

राष्ट्र के ५५ करोड़ नागरिक सुधर कर प्रभु पुत्र बन जाएं, शैतान की राह छोड़ दें तो भारत स्वर्ग बन जाए, इसी स्वर्ग को "राम-राज्य" का नाम देकर गांधी ने स्वतंत्रता संग्राम लड़ा था और इसी पावन लक्ष्य को और भी विस्तृत कर धरती को ही राष्ट्र मान संपूर्ण संसार में सुख शांति का साम्राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की थी।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना, यत्र विश्वं भवत्येकनीडं, का उद्देश्य कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् का आदेश एक ही लक्ष्य को ध्वनित कर रहा है कि संसार को स्वर्ग बनाओ। दु:ख हटाओ और सर्वत्र आनन्द रस बरसाओ।

और इस लक्ष्य का प्रारंभ व्यक्ति से होता है क्योंकि संसार या राष्ट्र नाम है व्यक्ति समूह का, व्यक्ति का सौन्दर्य ही समष्टि के रूप का निखार बन सकेगा। व्यक्ति का निर्माता 'धर्म' है। धर्म नाम है उस शक्ति का जो व्यक्ति को पूर्ण मनुष्य बनाती है। किन्तु धर्म जब लुप्त हो जाता है तब शैतान उभरता है और मनुष्य सिसकता है।

यही स्थिति आज भी है। धर्म को खोकर व्यक्ति शैतान की राह पर बढ़ रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो निराशा है उसने स्वार्थ को जन्म देकर एक ऐसे विष की उत्पत्ति की है कि मनुष्य मरता जा रहा है।

ऐसे में हम उन शाश्वत स्वरों की झंकृतियां सर्वत्र गुंजाना चाहते हैं जिन्हें सुन कर पशुता मरती जाए और जीवन उभरता रहे। धर्म के नाम पर बढ़ते हुए अधर्म को चुनौती देकर हम उस की समाप्ति का सामान जुटाना चाहते हैं। हम सारी धरती पर एक ऐसा ज्ञान का वितान तानना चाहते हैं, जिस की कल्पना देव दयानन्द ने अपने अमर ग्रंथों में की है।

इस चाह की राह का आरंभ व्यक्ति के आत्म बोध से होता है। नेआप पहले दूसरों की चिन्ता छोड़ अपने को देखिए, कि आप क्या हैं ? अप ट को सुधारिए, निखारिए और विचार कीजिए कि आप में क्या कमी है ? प्र येक व्यक्ति अपनी कमियां स्वयं जानता है। आप भी जानते हैं, उन्हें दूर कीजिए।

सच मानिए, आप सुधर जाएंगे तो संसार सुधर जाएगा। दूसरों के सुधार का काम बिना अपने को सुधारे नहीं हो सकता। उपदेश आचरण के प चात् ही शक्ति पाता है। मेरे भाई ! बहन ! आज से आप अपने को सुधारने में लग जाइए, फिर देखिए आप में कितनी शक्ति एकत्र हो जाएगी।

—राकेश

"जन-ज्ञान" की सदस्य संख्या १५ जून तक दुगनी करने के संकल्प में योग दीजिए

आपका 'जन-ज्ञान' ५वें वर्ष में प्रविष्ट हो चुका है। इच्छा है कि इस की सदस्य संख्या दुगनी हो जाय, ताकि हम इसे और भी सुन्दर और आकर्षक निकाल सकें।

इस पवित्र कार्य में 'जन-ज्ञान' मासिक के पुराने सदस्य हमारा हाथ बंटाएं। २ नए सदस्य बनाकर उन का शुल्क १५) और ५) का कूपन (जो दूसरी ओर छपा है) हमें भेज दें।

अपनी ओर से २ मित्रो को भेंट में भेजिए या जैसे भी हो १५) और कूपन आज ही भर कर भेजिए।

लक्ष्य पूर्ति के लिए क्या आप यह प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

विनीता
राकेश रानी
संपादक

नोट—१५ जून के बाद यह सुविधा न होगी। पोस्टल आर्डर क्रास 'जन-ज्ञान' नई दिल्ली-५ के नाम भेजें।

—व्यवस्थापक

कूपन : ५) का

१५ जून १९७२ तक जो पुराने सदस्य २ नए सदस्य वनाकर भेजेंगे उन्हें इस कूपन के साथ में ५) कम देने होंगे। अर्थात् यह कूपन और १५) भेजकर वे दो नए सदस्यों को वर्ष भर के लिए 'जन-ज्ञान' का सदस्य बना सकते हैं।

—व्यवस्थापक

श्री व्यस्थापक जी,

जन-ज्ञान (मासिक)

कृपया दो नए सदस्यों को जन-ज्ञान का सदस्य बना लें। १५) भेज रहा हूं और ५) का उपरोक्त कूपन-नए सदस्यों के नाम हैं—

पता :—

१ ....

....

२ ....

....

मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ ~ भारतेन्द्र ना

अलवर में आर्य सम्मेलन

क्यों किया ?

क्या मिला ?

क्या आर्यसमाज शताब्दी भी ऐसी ही होगी ?

सोच रहे हैं इन प्रश्नों का उत्तर दें या न दें, संभव है कुछ मित्र रुष्ट हो जायें, बहुत सोचते हैं तो मन की स्पष्ट बात कहने का ही निर्णय ले पाते हैं। यहां पर पहले ही स्पष्ट करदें कि हमारा उद्देश्य किसी व्यक्ति या संस्था को हानि पहुंचाना नहीं अपितु उस के गौरव को बढ़ाना है। हम आर्यसमाज संगठन के गौरव को आसमान तक पहुँचाना चाहते हैं। इन पंक्तियों को लिखने का उद्देश्य केवल इतना है कि भटका नेतृत्व संभले और पद-भाषण-माला-स्वागत के व्यामोह से छूट ऋषि दयानन्द का काम करने में लगे।

पिछले अंक में व अन्य समाचार पत्रों में भी हमने अलवर सम्मेलन को सफल बनाने की अपील की थी। स्वयं भी उत्साह सहित वहाँ गए और सपरिवार भीषण गर्मी में १८ से २२ तक वहाँ रहे। वहां सब कुछ देखा और देखकर हमारे मन को जो आघात लगा उसे लिखना लेखनी द्वारा संभव नहीं है।

सबसे पहला प्रश्न जो उभरता है कि इस भयंकरगर्मी में ही जानबूझ कर यह महासम्मेलन क्यों रखा गया ? कौनसा वह विकट संकट था जिसके कारण इन तिथियों में सम्मेलन रखना अनिवार्य था। जहाँ तक हमारी जानकारी है आर्य सम्मेलन गंभीर समस्याओं के उत्पन्न होने पर ही किये जाते रहे हैं।

इस समय कौन सी ऐसी उलझन थी जिस के सुलझाने के लिए गर्मी में सभी को झुलसाना अनिवार्य समझा गया ?

यदि रख भी लिया था—और आयोजकों की दृष्टि से सब कुछ ठीक था तो दूसरा प्रश्न है कि इस सम्मेलन ने आर्य जगत् को क्या दिया ? शायद रक्षा मन्त्री श्रीजगजीवन राम और श्रीराम गुलाम की उपस्थिति ही इस सम्मेलन का बड़ा आकर्षण थीं। हम क्या यह समझ लें कि अब आर्यसमाज के प्रवक्ता का कार्य राजनैतिक नेता ही किया करेंगे ?

वहांके कष्ट और कठिनाइयोंकी चर्चा हम नहीं करना चाहते क्योंकि प्रत्येक बड़े आयोजन में वे स्वाभाविक हैं, किन्तु कार्यक्रम में राजनैतिक नेताओं की भरमार, अनुशासन हीन व्यक्तियों द्वारा सम्मेलन स्थान में ही पृथक भाषण व्यवस्था और उस की रोकथाम में असमर्थता, नयी प्रेरणा और दिशा का अभाव नेतृवर्ग के ऐसे कार्य हैं जो हमारी दृष्टि में किसी भी स्थिति में उचित नहीं।

आर्यसमाज का जो ऊंचा स्तर ऋषि दयानन्द ने स्थापित किया था उसे हम मुखरित नहीं कर पाये। धर्म और अध्यात्म की गंगा बहाने की गंगोत्री आर्य सम्मेलन नहीं बन सका। ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में वेदों का डंका बजाने का संकल्प भी नेतागण नहीं गुंजा सके।

सम्मेलन के कार्यक्रम में प्रात: का कार्यक्रम यदि न होता तो सारे सम्मेलन को देखकर यह मानना भी कठिन था कि यह आर्यसमाज का सम्मेलन है।

सच तो यह है कि राजनीति के मोहपाश ने आर्यसमाज को ग्रस लिया है। नेतृत्व स्वयं दिग्भ्रमित है। समिति और प्रस्ताव से आगे हमारे पास कुछ नहीं है। भाषणों के अतिरिक्त और हमारे पास कोई काम नहीं। हमारे लिये आर्यसमाज केवल एक सीढ़ी है राजनीति में पहुँचने की।

आर्यसमाज के बल पर हम संसद् और विधान सभाओं में पहुँचना चाहते हैं। आर्यसमाज के मंच पर हम राजनैतिक नेताओं की पूजा करते हैं। गुरुदेव दयानन्द के लिये हमारे पास केवल शब्द हैं, श्रम नहीं।

सत्यार्थ प्रकाश और ऋषि जीवन का प्रचार आज के नेताओं की दृष्टि में व्यर्थ है। वह तो हमारे जैसे मूर्खों की ज़हालत है। इसके लिए यत्न व्यर्थ। देश के घर-घर में दयानन्द की बात कैसे पहुँचायी जाए-यह सोचने का समय उनके पास नहीं। बड़े-आदमी-बड़ी बातें, बड़े नारे और आर्यसमाज जीत गया! सारे देश की आर्य जनता की ओर से हम यह जानना चाहते हैं कि लाखों रुपया व्यय करने के बाद सम्मेलन ने आर्य समाज को क्या दिया ?

हम जानते हैं इस का उत्तर शब्द जाल के अतिरिक्त और कुछ नहीं

हो सकता, लेकिन हम यह भी जानते हैं कि यदि आर्यसमाज के नेतृत्व ने अपने कार्य करने के ढंग में, व्यवहार और चिन्तन में परिवर्तन न किया तो दयानन्द का दिव्य स्वप्न इन के द्वारा पूरा न हो सकेगा।

आर्य जनता की श्रद्धा और त्याग भावना अपूर्व है। वह भीषण गर्मी में अलवर पहुँच सकती है और कड़कती सर्दी में बर्फ में भी गल सकती है। पर मेरे भाई! यह तो बताओ उसकी श्रद्धा और बलिदान भावना का आप रचनात्मक कार्यों में प्रयोग क्यों नहीं करते?

आर्यसमाज के कर्णधार नेताओं से हमारी करबद्ध सानुरोध विनम्र प्रार्थना है कि वे अपने गुरु के महान् लक्ष्य की पूर्ति के लिए स्वार्थ-दलबन्दी और स्वागत भूख से ऊपर उठें। आर्य समाज को ऋषि दयानन्द का आर्यसमाज बनाने में अपनी शक्ति लगाएं और राजनीतिक दलों के मोह पाश से अपने को बचाएं।

जलसे सम्मेलन और प्रस्तावों से आर्य समाज आगे नहीं बढ़ सकता। हमें विजय की इच्छा है तो राह बदलनी होगी, ढांचा बदलना होगा। नए युग के नए प्रवाह को नए संदर्भ में नया रूप देना होगा!

अलवर आर्य महासम्मेलन के साथ हमारा यह युग समाप्त होना चाहिए। और अगले तीन वर्ष में हमें दृढ़ निष्ठा से आर्य समाज को ऋषि दयानन्द का आर्य समाज बनाने का व्रत लेकर काम में लगना चाहिए। हम जानते हैं कि नेताओं के बहरे कान सुनकर भी हमारी बात नहीं सुनेंगे। क्योंकि क्षमा करें, उनके पास आर्य समाज के लिए न समय है न कोई योजना। कागज़ी प्रस्तावों से आगे वे कुछ कर सकें, इसकी भी आशा नहीं—दूसरी ओर युवक शक्ति उद्दंड है और राजनीति-छलनाके मोहपाश से ग्रस्त। ऐसे में भविष्य क्या होगा? आर्य समाज स्थापना शताब्दी भी क्या ऐसी ही मनायी जाएगी! क्या उस में भी राजनैतिक नेताओं का जमघट कर कर्तव्य पूर्ण समझ लिया जाएगा। यह प्रश्न समाधान चाहते हैं-सूत्र रूप से हमारे सुझाव इस प्रकार हैं—

आगामी तीन वर्ष में—

१—कम से कम १००० नए आर्य समाज स्थापित किए जाएं।

२—शिथिल आर्य समाजों को जागृत किया जाए।

३—आर्य समाज की वेदी को धार्मिक रूप दिया जाए, और केवल सिद्धान्तों पर ही भाषण हों।

४—उपदेशक विद्यालय ऊंचे स्तर पर खोला जाए। जिस में १०० विद्यार्थी शिक्षा पाएं। उत्तीर्ण होने पर उनके अच्छे स्तर से जीवन निर्वाह की व्यवस्था की जाए।

५—चारों वेदों का भाष्य सस्ता और लागत से भी कम पर सुलभ किया जाए।

६—सत्यार्थ प्रकाश-ऋषि जीवन फैलाने में शक्ति लगायी जाए।

७—उपदेशकों-संन्यासियों और आर्य विद्वानों को सर्वोच्च सम्मान दिया जाए।

८—साप्ताहिक-मासिक पत्र हिन्दी और अंग्रेजी में उच्च स्तर के निकालने की व्यवस्था की जाए।

९—उच्च कोटि का वैदिक साहित्य लागत से भी कम मूल्य पर दिया जाए।

१०—आर्यसमाज के बड़े संगठनों के अधिकारी वे ही बनें जो पूर्ण समय देने वाले हों और जिन का किसी राजनीतिक दल से कोई संबंध न हो।

साररूप में अलवर आर्य महासम्मेलन आर्यसमाज के नेतृत्व की विवेक शून्यता का, आर्य जनता की श्रद्धा और उत्साह का प्रतीक था।

परमात्मा आर्य नेताओं को बुद्धि दे, ताकि वे समझ सकें कि वे कितना बहक और भटक गए हैं। वही प्रभु उन्हें प्रेरणा करे कि वे सच्चे दयानन्द के अनुयायी बन कर दयानन्द का काम पूरा करने का व्रत ले सकें।

नोट—इन विचारों के संदर्भ में सभी प्रकार के विपक्ष या पक्ष के विचारों का जन-ज्ञान स्वागत करेगा—

संपादक

यदि हम भी एम. पी. होते—

आज के आर्यसमाजियों का भगवान है एम. पी.। जो एम. पी. बन गया समझो उस की पूजा आरम्भ। एक रात में वह योग्यतम बन गया। सम्मेलनों में अध्यक्ष पद सुरक्षित, स्वागत हेतु अग्रणी और सर्वत्र प्रधानता के लिये वह योग्य—योग्यता इस से अधिक और क्या चाहिये कि वह एम. पी. है।

प्रश्न उभरता है कि यदि धर्म प्रसारक आर्यसमाज में पूजा एम. पी. की ही होनी है तो कोई आर्य समाज का उपदेशक-प्रचारक-विद्वान् क्यों बनें? क्यों दिन रात आर्यसमाज की अलख जगायें?

हम ने उत्सवों पर—सम्मेलनों पर सर्वत्र मिनिस्टर और एम. पी. महोदयों की पूजा होते देखी है। भाषण उन के, स्वागत उनका, पूछताछ उन की और उपदेशक बेचारा बैठा सोचता है कि काश! मैं भी एम. पी. होता।

राजनैतिक व्यक्तियों की आर्यसमाज में पूजा होती रही तो यहां लेखराम कैसे पैदा होंगे? कौन अपने योग्य बच्चों को आर्यसमाज की भेंट चढ़ाएगा।

सच तो यह है कि आर्यसमाज के अधिकारियों के इस रवैये के कारण

आर्य समाज पिछड़ रहा है। धर्म चर्चा लुप्त होकर राजनीति हावी हो रही है। एम. एल. ए. और एम. पी. बनने-बनाने के लिये आर्य धनिक अपनी थैलियां खोल देते हैं और वेद प्रचार के नाम पर सी लेते हैं।

समय के प्रवाह ने आर्यसमाजों के अधिकारियों के मस्तिष्क विकृत कर दिये हैं। वे भूल चुके हैं कि आर्यसमाज क्या है? उसका उद्देश्य लक्ष्य कार्य क्या है? धर्म प्रचारक का असम्मान आर्यसमाज की समाधि तैयार कर रहा है।

आर्य समाज के अधिकारियो! कभी देवबन्द में जाकर देखो, कितने मुसलमान छात्र अपना जीवन इस्लाम के प्रचार के लिये दे रहे हैं। कारण की खोज करनी हो तो बताओ! कभी किसी ने किसी मस्जिद में किसी एम. पी. को अजान देते सुना है। धर्मोपदेश होगा तो मौलवी का। मस्जिद में मौलवी सब से बड़ा है। गिरजे में पादरी के सामने गवर्नर भी घुटने टेकेगा। पर यहां आर्यसमाज में पुरोहित-उपदेशक को तब याद करते हैं जब कोई एम. पी. सुलभ न हो।

हमारा विश्वास है कि आर्यसमाज की वेदी पर यदि इसी तरह उपदेशकों विद्वानों-संन्यासियों की उपेक्षा होती रही और राजनैतिक व्यक्तियों को सम्मान मिलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब उपदेशक-संन्यासी-विद्वान खोजने पर भी न मिलेंगे।

अभी अलवर सम्मेलन में स्थिति को देखकर एक पुराने उपदेशक के मुख से यह शब्द सुनकर कि पंडित जी! यदि हम भी आर्यसमाज की सेवा न कर एम. पी या. मिनिस्टिर होते तो हमारी भी पूछ हो जाती। व्यर्थ खोई आर्य समाज की सेवा में जिन्दगी। हमें बहुत कष्ट हुआ—जिस का परिणाम यह पंक्तियाँ हैं।

धर्म की वेदी कलुषित मत करो! वहां से वेद मंत्र के स्वर गूंजने दो। धर्म प्रचारकों का मान करो। संन्यासियों को उच्च स्थान दो। तभी हम ऋषि दयानन्द के लक्ष्य को पूरा कर सकेंगे......अन्यथा.........।

आप को जाना भी है?

जी हां आप को, हम को, सब को इस दुनियां से जाना है। जानते हैं आप? शायद जानते हुए भी नहीं जानते कि जिस देह को बड़े लाड़-प्यार-दुलार से सजाते हैं जिस के लिए झूठ सच बोलते हैं, पाप करते हैं वह हमारी-आप की देह जलेगी-जलेगी—कब! एक क्षण का भी तो भरोसा नहीं।

किन्तु फिर भी हम नादान लड़ने-झगड़ने और दिखावटी बातों में जीवन

अनमोल खो रहे हैं हमारा जीवन-दर्शन इस आधार पर बना है कि हमें यहीं रहना है ।

भोले भाई !

यह शरीर मनुष्य का वार-वार नहीं मिलेगा । यह मिला था तुम्हें अपने लक्ष्य प्रभु तक पहुँचाने के लिए तुमने खो दिया इसे इधर उधर भटका कर ... .. संसार के सारे भोग और धन तुम्हारे काम नहीं आएंगे......काम आएंगे केवल नेक काम, सोचो-समझो और जान लो यह सत्य कि तुम्हें इस धरती से जाना भी है.........जाना ही होगा । कोई यहाँ न रहा न रहेगा, जो समय मिला है उस में कमा लो वह धन जो तुम्हारे साथ जा सके ।

आप में और उन में

भेद क्या है ? जीवन व्यवहार में अन्तर क्या है ? आप अपने को आर्य कहते हैं किन्तु आप के रहन-सहन, शादी विवाह और अन्यों के कार्यक्रमों में कोई अन्तर है ।

क्या आप ने जीवन में सादगी को अपनाया है, जो उपदेश आप दूसरों को देते हैं क्या कभी उस पर स्वयं भी आचरण किया है ? इन प्रश्नों पर आप स्वयं विचार कर निर्णय दीजिए कि आप में और उन में भेद क्या है ?

हम उपदेश शब्दों से नहीं आचरण से दें तभी संसार हमारे पीछे चलेगा । हम जो भी कार्य करें अपने घर और परिवार से आरंभ करें । ध्यान रहे जिस ने घर में दिया नहीं जलाया वह बाहर भी नहीं जला सकता ।

ढ़ोंग और दिखावा हमारा सब से बड़ा शत्रु है । बाहर कुछ भीतर कुछ रखने से सफलता नहीं मिल सकती । जो कुछ भी हम कहें, ईमानदारी से उस पर स्वयं आचरण करें तो फिर देखिए सफलता किस तरह पास आती है ।

आप एकान्त में बैठकर आत्म निरीक्षण तो कीजिए और स्वयं अपने को कसौटी पर कसिए, यदि कहीं खोट हो तो उसे सुधारिए । जीवन-जीवन का लक्ष्य आप के सम्मुख आ जाएगा और आप अनुभव कर सकेंगे कि आप प्रभु-पुत्र हैं ।

★

२ नए सदस्य बनाएं !

अपने मान्य पुराने सदस्यों से हमने प्रार्थना की है कि वे 'जन-ज्ञान' की सदस्य संख्या दुगुनी करने में हाथ बंटाएं । इस के लिए १५ जून तक २ नए सदस्यों का शुल्क १५) कर दिया गया है । हमें विश्वास है कि सभी उत्साह पूर्वक कम से कम २ नए सदस्य बनाकर तुरन्त भेजेंगे ।

—भारतेन्द्र नाथ

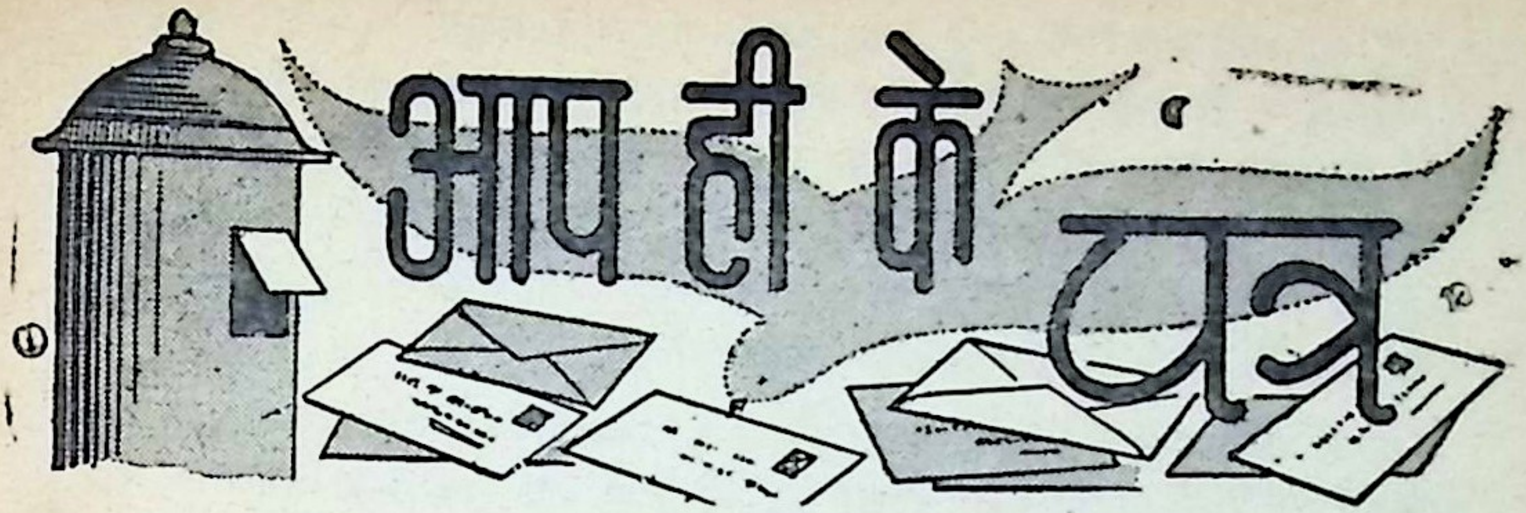

मई १६७२ के अंक में आर्य नेता श्री रामगोपाल जी का लेख पढ़कर धर्म के नाम पर अधर्म के प्रसारकों में कैसी प्रतिक्रिया हुयी है, इस का परिचय निम्न पत्र से आप को मिल जाएगा। हम इसे अविकल छाप रहे हैं इस विश्वास के साथ कि आर्य समाज पाखंड-खंडिनी पताका सर्वत्र फहराकर पत्र का उत्तर देगा—पत्र पढ़कर स्वयं कर्त्तव्य निश्चय कीजिए—

क्या आप इस पत्र का उत्तर देंगे ?

—संपादक

प्रिय बहिन

सादर नमस्ते

आपकी पत्रिका "जन ज्ञान" के १२ अंक में रामगोपाल साले वाले कालेख "धर्म के नाम पर भीषण षडयंत्र" पढ़कर एक कहावत की सही मिली, कि जैसे जिसके बाप महतारी, तैसे उसके लड़के, जैसे जिसके नदी नाले तैसे उसके भरिका (Ravince) अर्थात् जैसा आप और आपके सहयोगी ने अपने इष्ट, आराध्य या पथ-प्रदर्शक से सीखा है, वैसा ही आप कर सकेंगे, उससे अधिक ज्ञान और क्षमता आप लोगों में हो ही नहीं सकती है। और उसके बुद्धि की गहराई हमें पूर्ण रूप से मालूम है। सत्यार्थ प्रकाश लिख कर जिसने अपनी थोथी, गन्दी, गाली पूर्ण अज्ञानता की बन्दूक वेद के कंधे पर चलाई है। दूसरों को गाली देना ही जिसने अपना धर्म माना हो, दूसरों की मिथ्या आलोचना, गंदी भाषा का प्रयोग ही अपने अनुयायियों को छटी में दिया हो उससे और क्या उम्मीद की जा सकती है ऐसा होना बहुत स्वाभाविक ही है क्योंकि जो व्यक्ति ४२ साल तक दूसरों के बनाये हुये श्लोकों कोरट कर तोता बना हो और उसके बाद तोते की तरह चिल्लाता रहा हो उसके बने हुऐ [टेपरिकार्ड] आप लोग क्या जलती

हुई दुनियां को मानसिक और सामाजिक शान्ति दे सकते हो। अरे उल्लुओं ! सूरज को गाली देने से सुबह रुकने वाला नहीं है। अपने को सुरक्षित रखने के लिये, कर्म, ज्ञान और भक्ति का सहारा लो और अहंकार को छोड़ कर उसकी शरण में चले जाओ जो वेद का जनक है, वेद जिसके कंठ से निकल रहा है, उसको गाली देने का अर्थ है दयानन्द सरस्वती की पुनः हत्या करना तथा वेद के प्रसार में गतिरोध पैदा करना।

आज आर्य समाज एक मृतप्राय: संस्था है **(dead Organization)** संस्था है। आदर्शों को सेठों और पैसे वालों की थैली में बेच दिया है। मन्दिर और स्कूलों पर सेठ और सेठानियों के नाम अमरत्व के हिलोरे ले रहे हैं किताबें छपवाने के लिये काला धन देकर अपना नाम कमा रहे हैं उत्सवों के नाम पर शोषण और चोरी की कमाई का उपयोग किया जा रहा है इस सबसे बहुत शीघ्र ही दयानन्द का बचा खुचा नाम, ईंठ, गारे के अलावा और कुछ भी नहीं रहेगा, और ईंट, गारे की उम्र ५०-१०० साल से ज्यादा नहीं होती वह पू॰ी हो चुकी है, अरे बेटी ! कब तक शेर की खाल ओढ़ कर रहोगी, शेर दहाड़ रहा है तुम्हारा कमजोर दिल कांप रहा है और इसलिये श्यार की तरह चिल्लाना शुरू कर दिया है। अपने मुंह मिया मिठू बनने से कुछ नहीं होने वाला है अगर तुम्हारे पास आदर्श नाम की कोई चीज हो तो समाज को खींचो, दूसरों को गाली देने से समय और कागज खराब करने से आप लोगों का बहुमूल्य मनुष्य जीवन व्यर्थ चला जायेगा जीवन आदर्श के लिये है, आदर्श के लिये कार्य करो और आदर्श के लिये मरो लेकिन यह शिखंडीपन आदर्श मुखी का स्वरूप नहीं है।

अगर आलोचना करनी है तो दर्शन शास्त्र के ऊपर करो दूसरा जो कह रहा है, दे रहा है उसमें कहां कमी है उसकी समालोचना करो। लेकिन ऐसा आप लोग नहीं कर सकोगे क्योंकि ऐसा करने से आपके उधारी शब्द ज्ञान का पर्दाफास हो जायेगा और तुम्हें कब्र में जाना होगा। तुम्हारी कब्र तो सत्यार्थ प्रकाश ने ही खोद दी है। अधिक से अधिक प्रतियां **(Free)** बंटवाइये कि जिससे तुम लोग भी शीघ्र ही अन्दर चले जाओ, तुम लोगों के ढोंग की कहानी हमें मालूम है धर्म, वेद तथा यज्ञ के नाम पर मनुष्य २ में भेद पैदा कर रहे हो, शोषण कर संकीर्णता का बीज डाल रहे हो दूसरों को फासिस्ट कहने वाला आर्य समाज और फासिस्ट की परिभाषा समझ ले तो उसे पता लग जायेगा कि आर्य समाज ही वास्तविक फासिस्ट है जो जातीय श्रेष्ठता **(Racial Superiority)** का ढोल पीट रही है। आनन्दमार्ग तो मानव मानव एक हो मानव धर्म एक है का नारा दे रहा है।

मैं बचपन से ही आर्य समाज के सम्पर्क में रहा। मन्दिरों में सहयोग

दिया। सप्ताह में तीन दिन टंकारा में रहता हूँ दिल्ली और पंजाब के लोगों को दयानन्द का झांसा फंसा लेता है दूर के ढोल सुहावने होते ही हैं। अगर देखना है तो कभी आकर टंकारा रहो, तटस्थ होकर दूसरों के साहित्य को पढ़ो तो देखोगे कि तुमने अपने को रोटी, केवल रोटी के लिये अपने आदर्श को वेच दिया है और अपने जीवन को बर्बाद कर रही हो।

रामगोपाल सरीखा वेककूफ क्या आनन्दमूर्ति को जान सकेगा सालेवाला ने अपनी जिन्दगी में फरेब और वेईमानी के और कुछ नहीं किया, वह दूसरों को वैसा ही समझेगा। प्रभात रंजन रेलवे सर्विस के समय कुछ काम नहीं करते थे तो क्या उनका काम सालेवाला कर आता था ? अरे वह भला काम क्या करेगा, जिसके लाखों बेटे बेटियां काम कर रहे हों जिसकी एक आवाज पर ही ७—८ हजार पढ़े लिखे युवक युवतियां अपने हाथों पर शिर को लेकर आगे आ गये हों युग परिवर्तन के लिये, वह काम देता है। उसकी आज्ञा से काम होता है। आनन्दमूर्ति के प्रत्येक वाक्य को धरा पर (Materialize) करने के लिये मेरे खून की एक २ बूंद प्रस्तुत है। दुनियां के लोगों के सामने आनन्दमूर्ति की शरण में आये बिना न तो मानसिक और सामाजिक शान्ति मिलने वाली है। आज नहीं तो कल आपकी और आपके सागिर्दों को आनन्दमूर्ति के चरण रज को अपने माथे से लगाकर अपना जीवन सफल बनाना ही होगा, क्योंकि उनकी दी हुई चीजें अकाट्य, स्पष्ट, तर्कसंगत वैज्ञानिक और संकीर्णता से रहित हैं। तुम लोगों का पाखण्ड और ढोंग अब समाप्त होने ही वाला है। मैं रोज यहाँ आर्य समाज की आखरी सांस देख रहा हूँ वड़ी २ इमारतें खड़ी हैं उनका उपयोग करने वाला एक भी मनुष्य नहीं बन सका है टंकारा (Library) की हज़ारों पुस्तकों में आग लगवा दी जाती है क्योंकि उनको पढ़ाने वाला कोई नहीं है इधर उधर से भेंस चराने वाले २, ४ लोगों का स्वप्न दिखाकर तोता बनाया जा रहा है क्या ऐसे ही तोते स्वर्णिम भविष्य का दिग्दर्शन करायेंगे ? या विज्ञान की तीव्र गति से पग न मिला सकने के कारण अपना ही दम तोड़ देगें। मैंने तो भारत में हर जगह आर्य समाज का जनाजा उठता देखा है। तुम लोग ईंट गारा खड़ा कर सकते हो कागज गालियों से भर सकते हो लेकिन आदमी नहीं बना सकते हो और न खुद ही आदमी बन सके हो खुद गुलाम बन सकते हो लेकिन गुलामी से दूसरों को मुक्त नहीं करा सकते हो, क्योंकि ढोंग पाखण्ड और अंधविश्वास अब विज्ञान की आग में जल चुके हैं। घी तील जलाने से वायु शुद्ध होता है या दूषित, पानी बनता है या कार्बन डाई आक्साइड (Co5) आदमी भूखों मरता है या देवताओं पेट के भरता है यह अब बुद्धि की कसौटी पर है। अरे ! अब तो बुद्धि के ताले को खोलो और अपनी अज्ञानता को स्वीकार कर महापुरुष के चरणों को चूम लो और उसके सन्देश की दुनियां में फैलाओ। नहीं तो लोगों की यह मनुष्य देह व्यर्थ चली

जायेगी और खबर नहीं किस पशु पक्षी की योनि में हजारों सालों तक पड़ा रहना पड़े।

समय रहते जाग जाना अच्छा है। आनन्द मार्ग की Theory समझने के लिये तुम लोगों के पास दिमाग नहीं है। वह तो भविष्य के विकसित मनुष्य के लिये है। हां तंत्र साधना सीखने का मानव मात्र का जन सिद्ध अधिकार है। वह Practihs है उसे सीखो और करो उससे विकसित अग्रम बुद्धि ही साधना आनन्द मूर्ति का परिचय देगी इसके लिये दिल्ली में D—41 South extention Part one New Delhi 49. पर जा कर सीख कर अभ्यास करो और मनुष्य योनि को पूर्ण करो।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि महा पुरुष जब भी आया कभी भी पूजा नहीं गया, कैद होना यातनादि मिलना,पापियों विरोधों को सामना करना ही तो उसकी महानता के लक्षण हैं। और आर्य समाज को यह सब कहने का हक ही नहीं है। क्योंकि उसके मसीहा को कई बार जहर दिया गया। क्यों? उसी प्रकार आज आनन्द मूर्ति और आनन्द मार्गियों को यातनायें दी जा रही हैं आनन्द मार्ग इस तरह के अवरोधों और यातनाओं को आवश्यक भी मानता हैं और मुकावला करने के लिये सहर्ष तैयार है क्योंकि गाली बकने से इतिहास नहीं बदला करते हैं। इतिहास खून की धार के साथ बदलता है। और इसी लिये हजारों युवक अपने सिर कटाने के लिये, मानव समाज को भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक बन्धनों से मुक्त करने के लिये, आगे आ चुके हैं। हम पापियों धर्म और वेद के नाम पर व्यापार करने वाले ढोंगियों, शोषकों तथा अनैतिकों से सब तरह से मुकावला करने के लिये तैयार है।

और मैं आप लोगों से क्या कहूँ अगर दुनियाँ में किसी की भलाई बनें तो करो नहीं तो चुप रहो, इस टुच पन से कुछ भला होने वाला नहीं है।

आपको जानकर दुःख होगा कि जामनगर, राजकोट, जूनागढ़ और अमेली जिलों के प्रत्येक ग्राम में आनन्द मार्ग के साथ की संख्याँ बढ़ रही है। पढ़े लिखे उत्साही युवक आगे आ रहे हैं यही स्थिति सारे गुजरात की है। जलने वाले जला करें आनन्द मूर्ति हमारे साथ है। कुत्ते तो भोंकते ही रहते हैं हाथी अपने रास्ते से आगे बढ़ता ही रहता है।

भगवान तुम्हें बुद्धि दे कि तुम मनुष्य बन सको।

तुम्हारा भाई,
देवेन्द्र एम. भट्ट
३५ चादी बाजार
जामनगर

पत्रोत्तर के लिये मैं अगले अंक में इन्तजार करूंगा शायद यह पत्र तुम्हारे और सालेवाला का दिमाग ठीक करने में कुछ मदद कर सके।

जन-ज्ञान (मासिक) का अगला अंक

—वेदामृत—

होगा। ४५० पृष्ठ। प्रसिद्ध विद्वान् श्रीपाद पं० दामोदर सातवलेकर व स्वामी वेदानन्द जी का वेद मंत्रों का अनुपम भाष्य

जीवन के विभिन्न विषयों पर वेद का मार्ग दर्शन

१५ अगस्त तक मिल जाएगा—

अजिल्द—२००) सैकड़ा। ११०) की ५०। ६०) की २५ और ३०) की १० प्रतियां।

सजिल्द—३००) सैकड़ा। १५५) की ५०। ८०) की २५ और ४०) की १० प्रति

अनमोल : बेजोड़ : लागत से भी कम पर

वेद-प्रचार के लिए मंगाइए

जन-ज्ञान प्रकाशन
नई दिल्ली-५

वेद--गंगा

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति। इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम्॥

ऋग्वेद मं० १-७-६

पदार्थ—(**यः**) जो (**इन्द्रः**) दुष्ट शत्रुओं का विनाश करनेवाले परमेश्वर (**चर्षणीनाम्**) मनुष्य (**वसूनाम्**) अग्नि आदि आठ निवास के स्थान, और (**पञ्च**) जो नीच मध्यम उत्तम उत्तमतर और उत्तमोत्तम गुण वाले पांच प्रकार के (**क्षितीनाम्**) पृथिवी लोक हैं, उन्हीं के बीच (इरज्यति) ऐश्वर्य के देने और सब के सेवा करने योग्य परमेश्वर है। वह (एकः) अद्वितीय और सब का सहाय करने वाला है॥ ६॥

भावार्थ—जो सबका स्वामी अन्तर्यामी व्यापक और सब ऐश्वर्य का देनेवाला, जिससे कोई दूसरा ईश्वर और जिसको किसी दूसरे की सहाय की इच्छा नहीं है, वही सब मनुष्यों को इष्ट बुद्धि से सेवा करने योग्य है। जो मनुष्य उस परमेश्वर को छोड़ के दूसरे को इष्ट देव मानता है, वह भाग्यहीन बड़े बड़े घोर दुःखों को सदा प्राप्त होता है॥ ६॥

सब का स्वामी, अन्तर्यामी, दुष्ट विनाशक, हे भगवान !
अग्नि आदि वसुओं का रक्षक, उत्तम मध्यम का गतिमान
जितने भी हैं लोक सभी को, गति देता है वह भगवान
साथ छोड़ता उस का जो है, पाता दुख वह, कष्ट महान्

—भारतेन्द्र नाथ

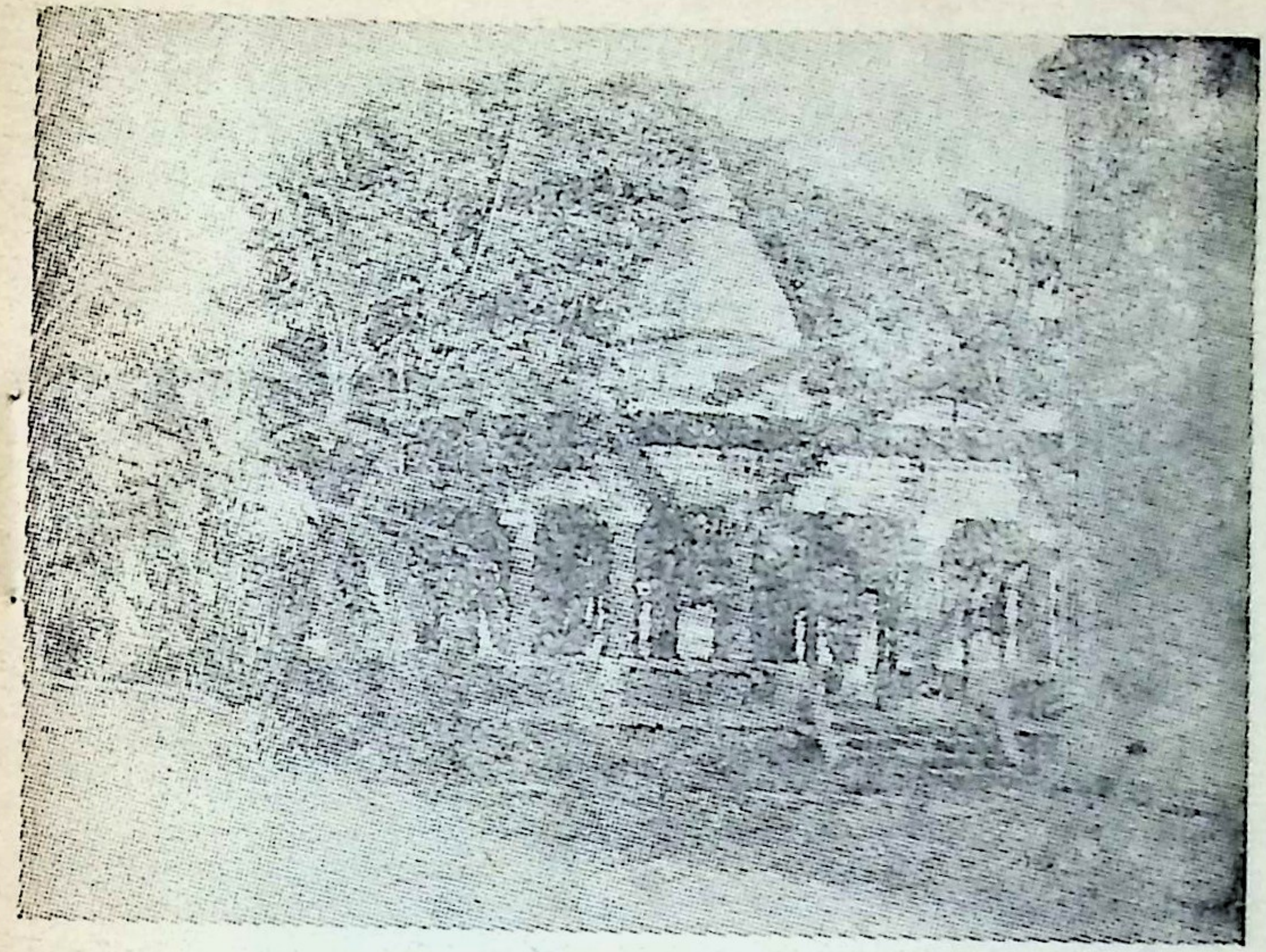

विद्यालय की दर्शनीय यज्ञशाला

एक आदर्श संस्था

आर्य महाविद्यालय किरठल

मेरठ ज़िले के छोटे से ग्राम किरठल में आर्य विद्यालय की प्रशंसा बहुत दिनों से हम सुन रहे थे। किन्तु इस वर्षमाननीय श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती के विशेष आग्रह से वार्षिकोत्सव पर ३० अप्रैल को हमें किरठल जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

वृक्ष कुंजों के मध्य बना हुआ यह विशाल विद्यालय देखकर उस क्षेत्र की जनता की धर्मपरायणता की छाप हृदय पर स्वतः अंकित हो जाती है। प्रातः ७-३० बजे हम वहां पहुँचे और मध्यान्ह २ बजे तक रहे। इस काल में हमने संस्था का परिचय भली भांति प्राप्त किया।

जैसे वन-पर्वत देख अदभुत चित्रकार प्रभु की लीला के सम्मुख सिर नत हो जाता है। वैसे ही इस विद्यालय के विकास-विस्तार को देख कर यह अनुमान स्वत: हो जाता कि इसके पीछे भी किसी मनीषी की परम साधना है। इतिहास की खोज से ज्ञात हुआ कि संस्था के निर्माण का श्रेय श्री जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती के तप त्याग और अनवरत साधना को है।

उन्होंने तीस वर्ष से भी अधिक समय लगाकर संस्था का विकास किया है। यहाँ के वातावरण में सादगी, गांभीर्य, नम्रता और उत्साह का अद्भुत मिश्रण था। जो अन्यत्र बहुत खोजने पर भी मिलना दुर्लभ है।

श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती

संस्था में उपस्थित जन समूह की श्री सिद्धान्ती जी के प्रति अटूट निष्ठा और श्रद्धा भी अनुपमेय थी। विवादों की झंझा में सभी एक स्वर से श्री सिद्धान्ती जी के आदेश के प्रति नतमस्तक थे। श्रद्धा का यह रूप यदि आर्य समाज में सर्वत्र प्रकट हो जाए तो कितना सुखद हो।

●

व्यक्ति से संस्था बनती है। कुछ मिटता है तो बनता है। यह सर्वमान्य सत्य आर्य महाविद्यालय किरठल पर भी खरा उतरता है। वस्तुतः श्री सिद्धान्ती जी ने अपना जीवन लगाकर ही संस्था को बनाया है।

प्रभु कृपा करें कि भविष्य में भी संस्था को ऐसे तपस्वी व्यक्ति मिलते रहें। जन मानस श्रद्धा से इसी तरह संस्था के विकास में लगा रहे। वर्तमान आचार्य श्री पं० शिवपूजन जी जैसे विद्वान संस्था की शोभा बढ़ाते रहें।

टूटते स्वरों में गूंजती वीणासा आर्य महाविद्यालय किरठल आर्यसमाज का गौरव सदा बना रहे। प्रभु से हमारी यही प्रार्थना है— —भारतेन्द्रनाथ

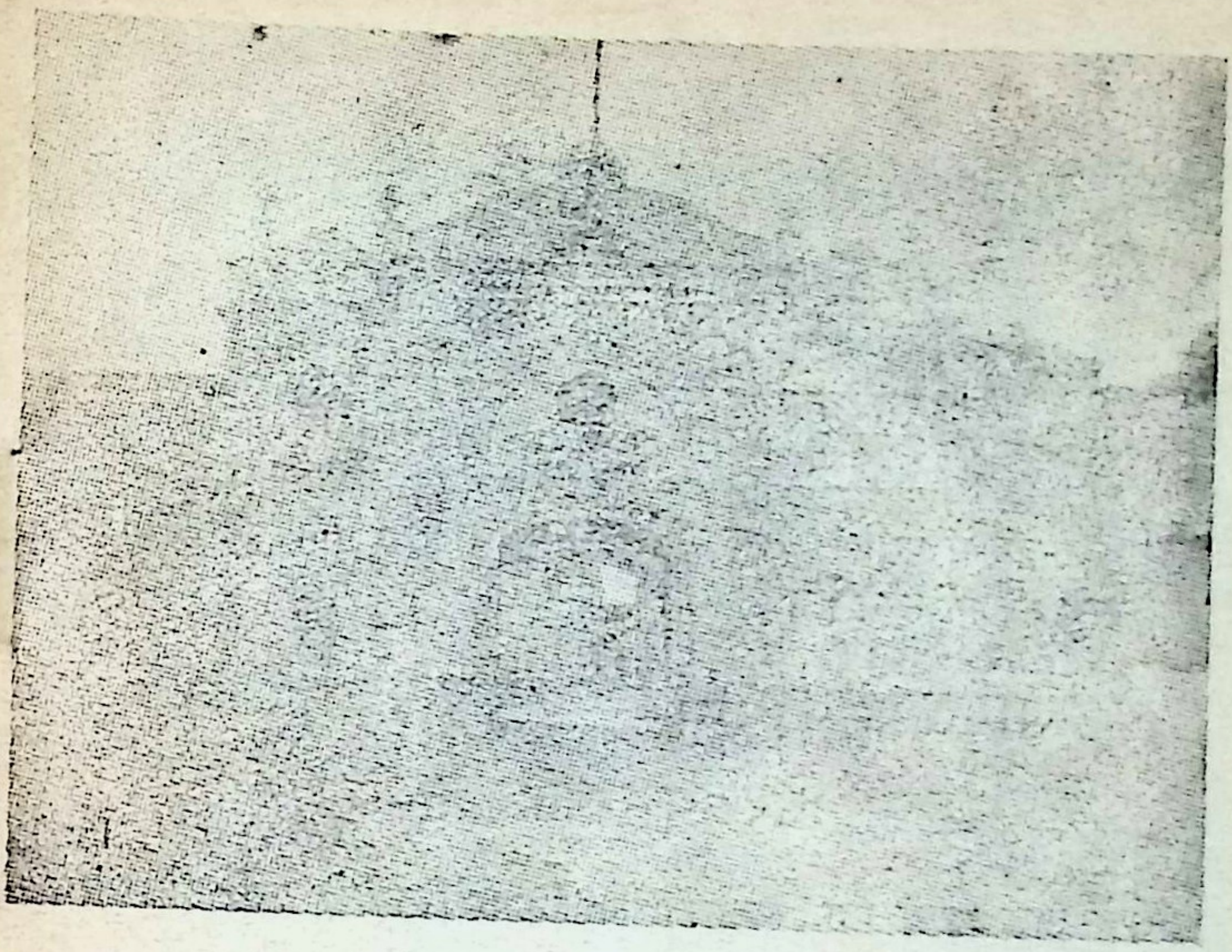

आर्य महाविद्यालय किरठल का विशाल नरपति द्वार
और इस वर्ष तो विद्यालय से बड़ी सड़क तक सड़क भी बन गयी है।
और ठीक सड़क पर ६०००) की लागत से श्री पहलवान
टीकाराम जी ने एक दर्शनीय द्वार भी वनवा दिया है।

ला० दीवानचन्द जी अस्वस्थ

महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा के प्राण और कार्यकर्ता प्रधान ला० दीवानचन्द जी ३-४ मास से निरन्तर रुग्ण चल रहे हैं। कुछ दिनों तो उन्हें असह्य कष्ट भोगना पड़ा।

प्रभु कृपा से अब वे धीरे-धीरे स्वास्थ लाभ प्राप्त कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि शीघ्र ही निकट भविष्य में वे पूर्ण स्वस्थ हो समाज सेवा के योग्य हो सकेंगे।

'जन-ज्ञान' उन के आरोग्य की हार्दिक कामना करता है।

—संपादक

रियायती रेटों पर : आकर्षक चित्र

अनेक साइजों में

चित्र जो सामने के पृष्ठ पर छपा है।

घर-घर में ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के महापुरुषों के चित्र पहुँचाने की दृष्टि से हमने यह चित्र

लागत से अत्यन्त कम मूल्य पर देने का निश्चय किया है—

अब आप का कर्त्तव्य है कि अधिक से अधिक मंगा कर इन का प्रचार करें—

१—२०×२० इंच का अत्यन्त आकर्षक सुन्दर बढ़िया कागज पर चित्र जो सर्वत्र १।।) में बिक रहा है—बिल्कुल वही चित्र ५०) सैकड़ा

२—१०×१० इंच का यही चित्र—बढ़िया कागज पर—२५) सैकड़ा

३—१०×१० इंच का महर्षि दयानन्द का चित्र—२५) सैकड़ा

४—१५×२२ इंच का १० नेताओं का चित्र दोनों ओर पत्ती लगा हुआ—२५) सैकड़ा

५—१९७२-७३ का कलेण्डर २२×३० साइज़ (मार्च १९७३ तक)—५०) सैकड़ा

ध्यान रहे स्टाक थोड़ा है। दुबारा छपने पर इस मूल्य पर नहीं मिलेगा—मंगाइए—और घर-घर में ऋषि चित्र पहुंचाइए—

—संपादक

आर्यसमाज के प्रकाशस्तंभ : चित्र व कैलेन्डर

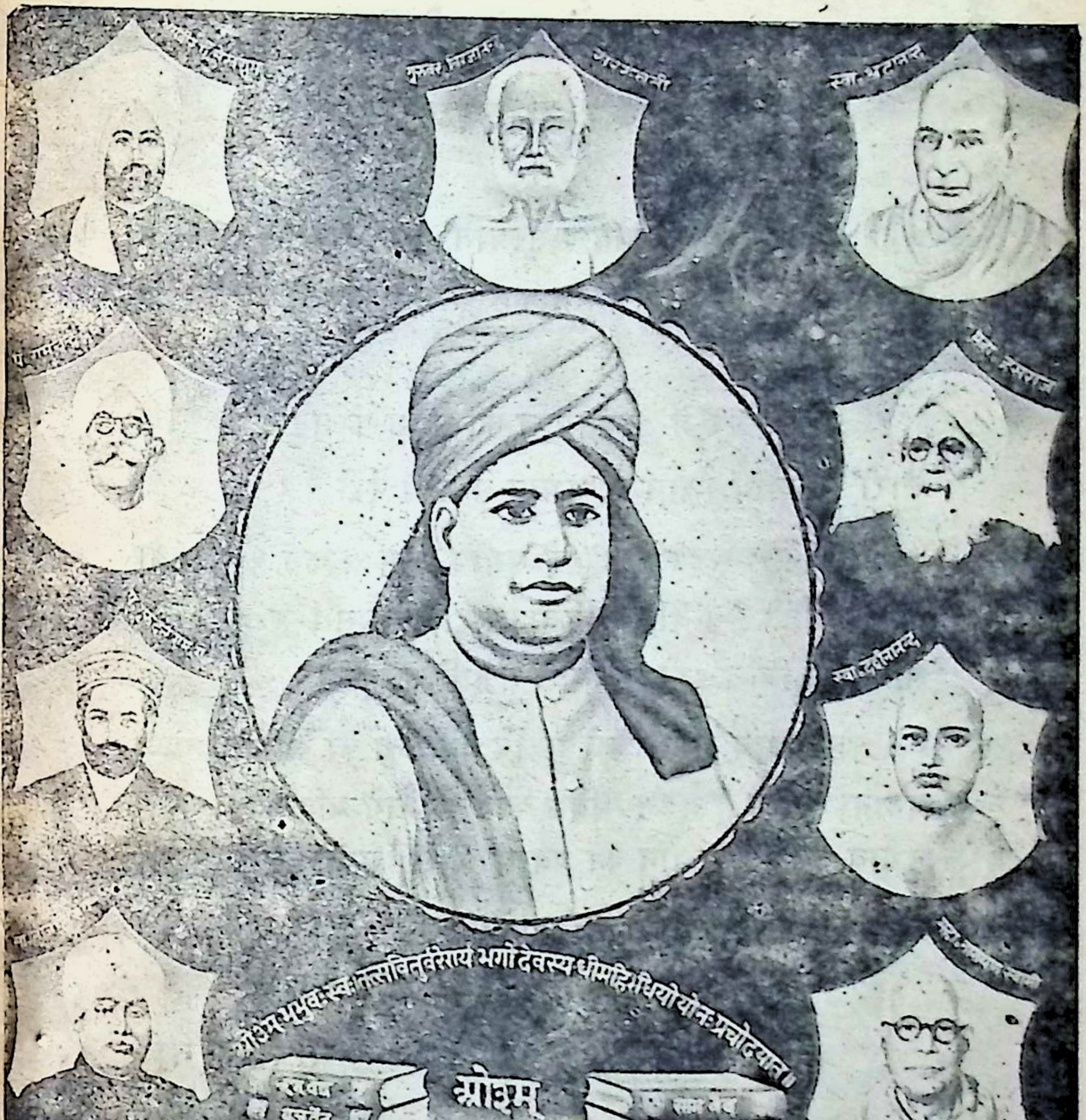

इस चित्र को घर-घर में पहुंचाने का व्रत लीजिए

दयानन्द-संस्थान, १५६७ हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

दयानन्द संस्थान के लिए स्थान की आवश्यकता

इस समय 'दयानन्द-संस्थान' का कार्य प्रभु कृपा से इतना बढ़ चुका है कि स्थान का अभाव एक समस्या बन चुका है।

संसार भर में आर्यसमाज का संदेश फैलाने की हमारी सारी योजनायें स्थान के अभाव से रुकी पड़ी हैं।

हम रेल-सड़क आदि के समीप कम से कम १० बीघा स्थान चाहते हैं। वैदिक विचारधारा को प्रसारित करने की सारी गतिविधि इसी स्थान से संचालित होंगी।

हम आर्य समाज को महर्षि दयानन्द का आर्य समाज बनाना चाहते हैं। इस पवित्र कार्य के लिये यदि कोई महानुभाव उपयुक्त स्थान का प्रबन्ध करा सकेंगे तो इतिहास उनका ऋणी होगा—

कृपया सम्पर्क करें।

भारतेन्द्र नाथ
अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान
१५६७ हरध्यान सिंह मार्ग
नई दिल्ली - ५

—जयप्रकाश नारायण

ईश्वर की लीला

बागियों का समर्पण

डाकुओं का हृदय परिवर्तित हो रहा है पर समाज में छिपे उन सफेद पोश डाकुओं का इलाज क्या होगा, जिन के भ्रष्टाचरण से राष्ट्र कराह रहा है। प्रस्तुत लेख में पढ़िए जीवन परिवर्तन की प्रेरक सच्ची गाथा—

—संपादक

पिछले दिनों मध्यप्रदेश, विशेषकर उसके ग्वालियर संभाग में जो एक अभूतपूर्व घटना घटी है उसकी प्रशंसा करना स्वाभाविक ही है। परन्तु एक आस्तिक और भक्तहृदय के नाते यह मैं पूरे विश्वास के साथ कहना चाहता हूँ कि वह ईश्वर की लीला मात्र है उसी ने खूंखार डाकुओं को यह शुभ प्रेरणा दी, उसी ने मुझ पर अपार कृपा कर मुझ जैसे अयोग्य व्यक्ति को इस कार्य के लिए अपना निमित्त बनाया। इस सम्पूर्ण चमत्कार में मैं निमित्त के सिवा और कुछ नहीं रहा। भगवान जाने क्यों डाकू सरदारों ने प्रत्यक्ष मिलकर अथवा अपना सम्वाद भेजकर मुझे यह बार बार कहा या कहलाया कि उनका विश्वास केवल विनोबाजी या मुझ पर है, और हम में से कोई भी इस कार्य को उठा ले तो वे उस व्यक्ति की सलाह पर चलने को तैयार हैं तथा उनको विश्वास है कि हम दोनों में से किसी की शरण में यदि वह अपने को समर्पित कर देंगे तो उन्हें न्याय प्राप्त हो सकेगा और उनका तथा उनके परिवारों का भविष्य सुरक्षित रह सकेगा। वे सब न्याय के अनुसार अपनी पूर्वकृतियों का फल भोगने को तैयार हैं। हां उनकी कुछ शर्तें थीं, जिनका जिक्र आगे करूंगा। उनका यह भी कथन था कि यदि हम में से कोई मध्यस्थता करना स्वीकार करे तो प्रधानमंत्री, गृहमंत्री, संबन्धित मुख्य मंत्रियों हाई कोर्टों के प्रधान न्यायाधीशों आदि में से किसी के सामने भी आत्म-समर्पण करने को तैयार हैं।

विनोबाजी कुछ समय में प्रत्यक्ष कार्य से मुक्त होकर "सूक्ष्म प्रवेश" की स्थिति में हैं, तथा उनका स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं है। इन कारणों से आज से कई मास पूर्व उन्होंने यह कार्यभार लेना अस्वीकार कर दिया था और मेरा नाम डाकुओं को सुझाया था। बस इस प्रकार मैं इस कार्य में फँसा जिसका थोड़ा और विवरण आगे दूँगा।

चम्बल घाटी : बागियों की मां

यूं तो डाके और कत्ल देश में हर तरफ होते ही रहते हैं। पर आप यह जानते हैं कि चम्बलघाटी की डाकू-समस्या कुछ भिन्न प्रकार की है जिसके कारण ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक हैं। यूं तो हर अपराध के सामाजिक कारण होते हैं, परन्तु चम्बलघाटी में यह सत्य विशेष प्रकार से लागू होता है। इसी विशेषता का एक परिणाम यह है कि यहां के ये डाकू अपराधी अपने को बागी कहते हैं और उस क्षेत्र की जनता भी अधिकांशत: उनको उसी रूप में देखती है। यदि इस समस्या की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का वर्णन यहाँ नहीं भी किया जाय—इस प्रश्न पर काफी लिखा जा चुका है—तो भी आज के डाकुओं में १०० में से ७५ ऐसे हैं जिनको या जिनके परिवारों को सामाजिक न्याय नहीं मिला—या तो सामंती समाजव्यवस्था, दोषपूर्णभूमि व्यवस्था, या पुलिस-पटवारी आदि प्रशासनिक अधिकारियों के पक्षपात, धाँधली, भ्रष्टाचार के चलते-तो उन्होंने प्रोटेस्ट या विद्रोह में बदले की कोई हिंसक कार्रवाई करके चम्बलमाला के बीहड़रूपी अंचल में छुपकर शरण ले ली। क्योंकि बीहड़ों में पहले के विद्रोही बागी परम्परा से पड़े हुए रहते रहे हैं। इस नये आगन्तुक को वे अपने गिरोह में भर्ती कर लेते हैं। इस प्रकार एक नये डाकू का जन्म होता है। क्योंकि समाज के अन्याय के प्रति विद्रोह करके वे बीहड़ों में पहुँचे हैं इसलिये वे अपनी नजर और बहुतेरे दूसरों की नजरों में बागी बनते हैं न कि डाकू।

१४-१४ वर्ष के किशोर भी

अब तक जो २७० अपराधी आत्म समर्पण करके ग्वालियर जेल में दाखिल हो चुके हैं—उनमें १४ और १६ वर्ष के कई युवक हैं, जो इसी प्रकार अन्याय से विद्रोह करके हाल में डाकू बने हैं। अस्तु, इस प्रसंग का यहां विस्तार नहीं करना है। केवल इस बात का ध्यान रखना है कि चम्बलघाटी की डाकू-समस्या की कई विशेषताएँ हैं जिनके विषय में यदि शासन तथा समाज सेवियों की ओर से विशेष प्रयास हुआ तो इस क्षेत्र के सदियों का यह अभिशाप सदा के लिये मिटाया जा सकता है। बचे हुए थोड़े से डाकुओं के आत्मसमर्पण से—जो भी शीघ्र हो जायेगा, ऐसी आशा है--यह समस्या खत्म नहीं हो जायेगी यह बात सबको स्पष्ट हो जाय इसकी आवश्कता है।

१६६० का दिशा संकेत

उल्लेखनीय है कि सन् १६६० में सन्त विनोबाजी के सामने २० बागियों ने भिंड जिले में आत्मसमर्पण किया था। वह एक दिशा संकेत मात्र था कि इस जटिल समस्या का मानवीय हल भी हो सकता है।

उस समय विनोबाजी को इस कार्य की प्रेरणा देने वाले एक पुराने बागी थे, श्री तहसीलदार सिंह, जो नैनी जेल में अपने मृत्युदण्ड के कार्यान्वयन की प्रतीक्षा कर रहे थे। तहसीलदार सिंह प्रसिद्ध दस्युराज मानसिंह के पुत्र हैं। उन्होंने बाबा को सन् १६५६ में, जो उन दिनों काश्मीर की पदयात्रा कर रहे थे, पत्र लिखा था। उसके फलस्वरूप बाबा ने मेजर-जनरल यदुनाथसिंह से मिलने के लिये नैनी भेजा। उस अभिक्रम का परिणाम हुआ कि पं० लोकमन दीक्षित ने, जो लुक्का नाम से प्रसिद्ध थे, अपने गैंग के साथियों के साथ विनोबाजी के सामने अपने हथियारों सहित, आत्मसमर्पण किया।

मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की

आशा थी कि उसके बाद यह कार्य आगे बढ़ेगा। परन्तु कई कारणों से, जिनमें यहां जाने की आवश्यकता नहीं है, ऐसा नहीं हो पाया। उसके बाद १२ वर्ष बीत गये। सैंकड़ों डाकू मारे गये, सैंकड़ों गिरफ्तार हुए, सैंकड़ों छोटे बागियों ने पुलिस के सामने आत्मसमर्पण किया। करोड़ों रुपये खर्च हुए, लेकिन मर्ज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की। इसी बीच में मोहरसिंह, माधोसिंह, नाथू सिंह, सरूप सिंह आदि डाकुओं का आतंक बढ़ता रहा और डाकुओं की संख्या भी बढ़ती रही। बीहड़ों में एक कहावत बागी बनने के बारे में प्रसिद्ध है "एक मरे दो जायें, जाको वंश न डूबन पाये"।

कथा का दूसरा अध्याय

इस प्रकार एक युग बीत जाने के बाद इस कहानी का दूसरा अध्याय किस प्रकार प्रारम्भ हुआ वह संक्षेप में कहे देता हूं। पिछले साल के १ अक्टूबर की बात है। मैं पटने में अपने निवास में बैठा कुछ कार्य कर रहा था। उस समय एक व्यक्ति मुझसे मिलने आये और अकेले में बात करने की इच्छा प्रकट की। मैंने अपने पास उन्हें बैठा लिया। उन्होने अपना नाम रामसिंह बताया और कहा कि वे चम्बलघाटी के बागियों की ओर से संवाद लेकर आये हैं। संवाद यह था कि यदि मध्यस्थता करना स्वीकार करूं और थोड़ा समय दूं और चम्बल के बीहड़ों में कम से कम १ मास के लिये चला जाऊं तो इसबार २०-२५ नहीं, कुल के कुल बागी अपने को समर्पित कर देंगे-चाहे जिसके सामने भी मैं कहूँ। मुझे यह बातें सुनकर बड़ी हैरानी हुई और सहसा विश्वास नहीं हुआ। काम का बोझ भी मुझ पर पहले से ही इतना था कि मैं एक नया

काम-और वह भी इतनी जिम्मेदारी का लेने को तैयार न था। रामसिंहजी को मैंने यह सब कहा और बाबा के पास जाने की सलाह दी। उन्होंने बताया उन लोगों के एक प्रतिनिधि बाबा के पास जा चुके हैं और उनका भी आदेश हुआ था कि वे लोग मुझसे मिलें। फिर भी मैंने अपना पीछा छुड़ाने की बहुत कोशिश की। रामसिंह मुझे समझाते रहे कि यह काम भी सर्वोदय काम का ही है। मैंने यह स्वीकार किया, परन्तु फिर भी इस काम को लेने से इन्कार करता रहा। अन्त में जब रामसिंह जी ने देखा कि उनका मिशन विफल जा रहा है तब अकस्मात् उन्होंने अपने असली व्यक्तित्व को प्रकट किया कि "बाबूजी मैं ही माधोसिंह हूँ।" मैं यह सुनकर स्तम्भित हो गया और पूछा कि आप पर डेढ़ लाख का इनाम है तो आपने मेरे पास आने का जोखिम कैसे उठाया? बोले "आप पर हम लोगों का पूर्ण विश्वास है, इसलिये आया।" उसके बाद मेरे लिये आनाकानी करते रहना असम्भव हो गया। मैंने अपनी स्वीकृति दे दी और उसी समय माधोसिंह ने अपने को मेरे सामने समर्पित कर दिया। मैंने उन्हें अपने पास ही टिका लिया। मेरी पत्नी प्रभावती के सिवा उनका असली रूप और किसी को बताया नहीं।

उनकी शर्तें मेरा प्यार

दूसरे दिन उनसे विस्तृत चर्चा हुई। मुख्य बात यह निकली कि बागियों की ओर से आत्मसमर्पण की सात शर्तें हैं जिनमें मुख्य यह है कि यदि न्यायालय से मृत्युदण्ड किसी को हो भी जाय तो भी उसको फांसी नहीं होनी चाहिये। मैंने कहा कि यह बहुत उचित शर्त है। कम से कम मैं तो किसी की भी फांसी की जिम्मेदारी नहीं ले सकता। बाकी शर्तें थीं कि सब मुकदमें एक जगह चलें, पुलिस सब केस ६ महीने के अन्दर चालान कर दे और न्यायालय अधिक से अधिक ३ वर्ष में सब मुकदमों का फैसला कर दे। जेल में उनके साथ व्यवहार अच्छा हो, हथकड़ी-बेड़ी किसी को न लगे, जब तक वे हवालात या जेल में रहें उनके बाल बच्चों की देखरेख हो, उनके मुकदमों की पैरवी हो, आदि आदि।

कार्य में विलम्ब

उसके बाद मैंने रामसिंह (माधोसिंह) के छुपने की व्यवस्था गया जिले के अपने आश्रम में करा दी और केन्द्रीय गृह-मन्त्री तथा मध्यप्रदेश के, उत्तर-प्रदेश, राजस्थान के मुख्य मंत्रियों से पत्राचार तथा मिलकर चर्चा करना प्रारम्भ कर दिया। मुझे यह बताते हुए बड़ा संतोष और हर्ष हो रहा है कि इन सभी महानुभावो का अत्यन्त हृदयपूर्ण समर्थन और सहयोग मुझे प्राप्त हुआ। प्रधानमंत्री, इंदिराजी, का भी उसी प्रकार से समर्थन मिलता रहा। बीच में दुर्भाग्यवश मैं बीमार पड़ गया जिसके चलते इस कार्य में कम से कम ३ महीनों

का विलम्ब हो गया। आगे चलकर कई प्रदेशों में-जिनमें मध्यप्रदेश तथा राजस्थान भी थे-विधान सभाओं का आम चुनाव आ गया, जिसके कारण भी कार्य में कुछ विलम्ब हुआ। परन्तु अन्त में ईश्वर की असीम कृपा से, शासन के उदार सहयोग तथा सर्वसाधारण के समर्थन और प्रोत्साहन से डाकुओं के आत्म-समर्पण कार्य का १४ आना अंश पूरा हुआ। अब बड़ा गैंग तो सोबरनसिंह का ही बचा हुआ है और मलखानसिंह और उनके कुछ साथी बचे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह बचा हुआ कार्य भी शीघ्र सम्पन्न हो जायेगा। यदि मध्य-प्रदेश के मुख्य-मंत्री श्री प्रकाशचन्द्र सेठी तथा उनके प्रशासन का मुक्त सहयोग नहीं प्राप्त हुआ होता तो यह सफलता कदापि प्राप्त नहीं होती। हम उनके बड़े आभारी हैं।

इसके साथ साथ, श्री सेठीजी के कहने पर, हम लोगों ने बुन्देलखण्ड के क्षेत्र में भी कार्य आरम्भ कर दिया है। यह क्षेत्र चम्बलघाटी क्षेत्र से भिन्न है और यहाँ की डाकू समस्या भी कुछ भिन्न प्रकार की है। परन्तु मुझे विश्वास है कि यहाँ के गैंगों का भी आत्मसमर्पण १५ मई, नहीं तो ३० मई तक संपन्न हो जायेगा।

समस्या की जड़ों को काटना होगा

मैं यह बार-बार कह रहा हूं कि इन क्षेत्रों में आज के सभी डाकुओं के आत्मसमर्पण से ही इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता। समाधान का तो यह प्रथम चरण मात्र है। इस ऐतिहासिक समस्या की जड़ों को काटना होगा जिसकी तरफ ऊपर इशारा कर चुका हूं। जन मानस को सुधारने का प्रयत्न करना होगा, गांव गांव में शांति और सहयोग का वातावरण बनाना होगा। प्रशासन के निचले स्तरों के दोषों को दूर करना होगा, क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक विकास का काम शीघ्र हाथ में लेना होगा। यह कार्य तो शासन तथा जनता के सहयोग और परिश्रम से ही पूरा हो सकेगा।

इन दीर्घकालिक कार्यों के साथ-साथ कुछ तात्कालिक कार्य हैं जिनको पूरा किये बगैर यह रोग निर्मूल नहीं हो पायेगा।

तात्कालिक कार्य

चम्बलघाटी शांति मिशन, जिसके अध्यक्ष पद का भार परिस्थितिवश मुझे संभालना पड़ा है, अपने लिये चार-पांच तात्कालिक काम लिये हैं। एक, आत्मसमर्पणकारियों की कानूनी पैरवी। इस विषय में आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हम आशा करते हैं कि जीवन परिवर्तन के अपने संकल्प की ओर अग्रसर होने के हेतु ये सभी लोग अपना-अपना अपराध न्यायाधीश के

सामने स्वीकार कर लेंगे। उस दशा में सब मुकदमे जल्द ख़त्म किये जा सकते हैं और न्यायालय जैसे पवित्र स्थान पर मिथ्याचार किसी पक्ष की ओर से न हो पायेगा।

दूसरा तात्कालिक कार्य हमारे सामने समर्पणकारियों के परिवारों तथा उनके द्वारा पीड़ित और ध्वस्त परिवारों की देखरेख। शायद ये परिवार कुल मिलकर एक हज़ार तक की संख्या के हों। यह कितना बड़ा बोझ होगा इसका अनुमान आप लगा सकते हैं। इस कार्य में लाखों रुपयों की आवश्यकता पड़ेगी।

तीसरा कार्य, जो लगभग संपन्न हो चुका है, वह बाकी डाकुओं को हाज़िर कराना है।

चौथा कार्य है जेल में जो लोग बंद है उनसे संपर्क रखना और उनके आन्तरिक विकास का प्रयत्न करते रहना। यह कार्य मध्यप्रदेश के वरिष्ट सर्वोदय नेता श्री काशीनाथ त्रिवेदी के नेतृत्व में कई स्थानीय तथा बाहर के सहयोगियों की मदद से चल रहा है।

अन्य भी कुछ कार्य हैं जो प्रशासन से सम्बन्धित हैं। उनके सम्बन्ध में भी चर्चा चल रही है और थोड़ा प्रत्यक्ष कार्य भी हुआ है।

और ये प्रच्छन्न डाकू

अन्त में एक और बात कहना चाहता हूँ। मेरे पास कई चिट्ठियाँ आयीं और समाचार पत्रों में कई टिप्पणियां या पाठकों की चिट्ठियाँ निकली हैं जिनमें यह कहा गया है कि समाज के प्रकट डाकुओं का कुछ समाधान सर्वोदय पद्धति से हुआ है, परन्तु समाज के लगभग हर क्षेत्र में जो प्रच्छन्न डाकू हैं उनके विषय में भी सर्वोदय विचार वालों की जिम्मेदारी है। मैं यह स्वीकार करता हूँ, परन्तु यह निवेदन करना चाहता हूँ कि हर सद्विचार सर्वोदय विचार है। इसलिये इस देश में जितने सज्जन हैं, यानि जिनके सद्विचार हैं, उन सब की जिम्मेदारी है। और मेरा विश्वास है कि यदि परमात्मा चाहेगा तो इस दिशा में भी हम सबों को सद्प्रेरणा देगा। इससे कई भाई बहिन इस प्रकार सोचने और बोलने, लिखने लगे हैं यही इसका प्रमाण है कि परमात्मा की प्रेरणा काम कर रही है। मुझे आशा है कि इस दिशा में बढ़ने के लिये कुछ व्यावहारिक सुझाव भी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हों तो अच्छा होगा। केवल उपालम्भ के तौर पर मेरे ऊपर यह भार डाल देने से ही कुछ विधायक बात नहीं बनेगी। मैं अपनी मर्यादाएँ जानता हूँ। हम सबकी उलझन तो भगवान ही सुलझाएगा और देश की डूबती हुई नैतिकता को भी वही उबार सकेगा। ●

सत्यार्थप्रकाश शताब्दी के उपलक्ष्य में

अधिक से अधिक सत्यार्थप्रकाश मंगाइये

सत्यार्थप्रकाश का नया संस्करण तैयार है.........

प्रचार संस्करण—तिरंगा आकर्षक आवरण
२३×३६=१६ साइज - २००) सैकड़ा

उपहार संस्करण—कपड़े की बढ़िया जिल्द,
बढ़िया कागज, ३२५) सैकड़ा

१०, २५, ५०, १००, २५०, ५००, १००० प्रतियों के आदेश ही स्वीकार होंगे

धन आदेश के साथ ही भेजें : वी० पी० नहीं भेजेंगे

शीघ्रता कीजिए : तीसरे संस्करण की प्रतीक्षा न करनी पड़े।

व्यवस्थापक
जन-ज्ञान प्रकाशन
१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग, करौल बाग
नई दिल्ली-५

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के पुराने कार्यकर्ता श्री पं० मुंशीराम जी की धर्मपत्नी श्रीमती रामप्यारी जी का २० मई को दिल्ली में देहान्त हो गया। आप पिछले कुछ मास से कैन्सर से पीड़ित थीं। तीन पुत्र, दो कन्याएं और भरा हुआ परिवार आप अपने पीछे छोड़ गयी हैं। प्रभु दिवंगत को सद्गति और परिवार को वियोग कष्ट सहने का सामर्थ्य प्रदान करे। —संपादक

—स्वामी केशवानन्द जी

नशा : मृत्यु है

—:o:—

धूम्रपान का जन्म इतिहास

धूम्रपान-समस्या और उपाय पुस्तक के लेखक श्री डा० जान० एच० मानस (अनुवादक—श्री प्रीतम गिरी गोस्वामी)

धूम्रपान के इतिहास के विषय में लिखते हैं, कि ११ अक्टूबर सन् १४९२ कोलम्बस (क्रिस्टोफर) के ग्वावाहनी द्वीप के तीन जहाजों में से पिष्टा नामक जहाज के मल्लाहों को तम्बाकू पीते हुये पहले पहल स्पेन वासियों ने देखा, वह तम्बाकू के पत्ते को गोलाकार बना कर, जला कर धूंये को सूँघते थे। उनका कहना था कि इसके पीने से आनन्द अनुभव करते हैं और रोग की पीड़ा अनुभव नहीं होती। वास्तव में रोग तो दूर नहीं होता, उलटी हानि होती है।

स्पेन वाले गोरों ने कोलम्बस को पराजित कर जीत लिया परन्तु वहां से उनके पल्ले तम्बाकू पड़ गई।

स्पेन वालों ने अफरीका के हबशियों से तम्बाकू की खेती कराई, यह लोग काम करते हुये तम्बाकू पीकर कहते कि सारे दिन की थकान दूर हो गई। यहां से ही इस घातक तम्बाकू का श्री गणेश हुआ, वह इस दुष्ट धुंये का इतना प्रयोग करते थे कि वह नशे में चूर होकर पड़े रहते और विचार शक्ति खो बैठते थे।

तम्बाकू पहले स्पेन आया उसके बाद पुर्तगाल फ्रांस, उसके बाद इंग्लेन्ड में इसका प्रसार हुआ। सन् १५३३ से १६०३ तक धूम्रपान सारे इंग्लेन्ड में फैल गया और तम्बाकू की खेती और व्यापार जोरों से होने लगा।

इसके बाद अमरीका में सिगरेट बनाने का कार्य आरम्भ सन् १८६४ में १९ करोड़ ७७ लाख सिगरेट बनीं और १९०२ में तीन अरब बनीं और सन् १९३० में १२३ अरब सिगरेट बनीं अर्थात् ४१ गुना बढ़ गई। इसका खर्च ९२२ डालर से ५ लाख डालर हो गया। अमरीका सन् १९३५ में सिगरेट पर दस अरब डालर खर्च करता था।

जनवरी सन् १९५० रीडर्स डाइजेस्ट के लेखानुसार

सन् १९४९ में ४० शंख से भी अधिक सिगरेट पी गयीं, अमरीका का सिगरेट की बाबत सालाना खर्च कई खरब होता है। धूम्रपान से स्वास्थ्य खराब होने पर जो व्यय होता है उसकी तो शुमार नहीं। लेखक का कहना है कि अगर सब हिसाब जोड़ा जाय तो प्रति वर्ष एक शंख से भी ज्यादा बैठेगा।

इस रकम से अगर ५ लाख डालर लगाकर एक मकान बनाया जाय तो २० लाख मकान बन सकते हैं।

तम्बाकू में विष का भाग

उक्त लेखक के अनुसार सिगरेट में २०% निकोटिन विष का भाग है। एक व्यक्ति जितनी सिगरेट एक दिन में पीता है उनका जहर निकाल कर पीया जाय तो फौरन मृत्यु हो जायेगी, वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार तम्बाकू में २२ प्रकार के जहर बताये गये हैं। सब से तेज जहर "निकोटिन" है जिसके समान कोई जहर नहीं, उसका जहर किसी प्रकार शान्त नहीं होता। आज का नौजवान ऐसे जहरीले पदार्थ को शौक से फेफड़ों में भरता है। इससे हाथ पैरों में भड़कन, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाना, कार्य में बुद्धि का दिवालिया होना, निमोनिया, टाइफाइड, मृगी, लकवा, चक्कर आना, दमफूलना क्षयरोग का कारण तथा शरीर धीरे २ जीर्ण होकर मृत्यु का शिकार होता है।

विद्वान डाक्टरों की सम्मतियाँ

(१) अमरीकी मेडीकल एसोसिएसन १० दिसम्बर १९३८ की पत्रिका में कहा कि रोगियों की ९४८ घटनायें हॉस्पीटल में आईं जिनमें ९३% सिगरेट पीने वाले थे। इनमें चारसौ अंगविच्छेद तथा ८५ व्यक्तियों की टाँगें काट दी गईं। एक आदमी के हाथ-पैर दोनों काट दिये। जांच करने से पता चला कि धूम्रपान करने से हाथ पैरों का ताप मान गिर जाता है रक्त प्रभाव में ग्लाव पैदा कर देता है। तम्वाकू द्वारा दृष्टि का नाश, नाड़ी विकृति हो जाती है और रतौंधी पैदा होती है।

२—न्यूअलियेस नगर विश्वविद्यालय के डा० अलून आोश्नर एम० डी० धूम्रपान शक्ति प्रेरक पदार्थ नहीं जैसा विज्ञापन वाले प्रचार करते हैं। धूम्रपान शरीर को पतन की ओर ले जाता है। अत्यन्त विनाशकारी होने से मनुष्य को दास बना लेता है। धूम्र पीने वाले की मुँह की कोमल झिल्ली गले की श्वाँस नली में जलन पैदा करता है। होठ, जीभ, गला, फेफड़े में केन्सर पैदा होने का कारण धूम्रपान ही है। इन स्थानों पर केन्सर पैदा होने के लिये बहुत दिनों तक तम्वाकू पीने की आदत ही है, पेट छाती आँतों में केन्सर, कुकर खाँसी रक्त रोग हाथ पैरों में जलन शीघ्र मृत्यु लाने वाले हैं।

३—डा० अर्नेस्ट एल० विडर—न्यूयार्क नगर केन्सर के सर्जन धूम्रपान न करने वालों को फेफड़ों का केन्सर बहुत कम होता है। फेफड़ों के केन्सर के ७६० रोगियों में सिर्फ १४%धूम्र न पीनेवाले थे और ७८० कम धूम्र पीने वालों में १४-६% न पीने वाले रोगी थे, स्पष्ट है कि केन्सर का अधिक कारण तम्बाकू का प्रयोग करना है।

४—टामस ए० एडीसन की राय—

संसार में अन्य कोई वस्तु नहीं जो लड़के लड़कियों के स्वास्थ्य, शिक्षा, क्षमता तथा चरित्र पर इतना बुरा प्रभाव डाले जितना कि सिगरेट पीना, अधिकाँश दुर्व्यसनी लड़के सिगरेट पीते हैं। सिगरेट अपराध का साधन है। अपराध की प्रारम्भिक दशा है। जिसे अवहेलनाकी दृष्टि से देखना अदूरदर्शिता है और आज के राष्ट्रों के जाग्रत युग में यह सर्वथा अनुचित है।

५—डा० केम्प वैल—इस विषय पर मैं अन्धकार में नहीं हूं, न मैं कोई सुधार वादी कहलाने का इच्छुक हूँ किन्तु मेरी राय यह अवश्य है कि सिगरेट लड़कों का विनाश करने में मदिरा से अधिक काम करेगी।

६—हेमन्ड डा० डेनियल हार्न—सिगरेटों का एक पैकिट धूम्रपान करने वाले के जीवन के छः घन्टे कम कर देता है। यदि एक व्यक्ति नियम से दस वर्ष तक उपरोक्त गति से सिगरेट पीता रहे तो वह अपने जीवन विस्तार में से बीस वर्ष निकाल देगा।

७—डा० जान० एच० मानस—यदि एक बालक के सामने एक दहकता अंगार या एक रोटी का टुकड़ा हो तो बालक रोटी को न उठाकर दहकते अंगारे को पकड़ना चाहेगा। भलेही जल जावे, ऐसा ही चुनाव तम्बाकू के विषय में योरुप के लोगों ने किया।

सत्रहवीं शताब्दी का राजा जेम्स (इग्लैण्ड) ने तम्बाकू के विरुद्ध हुक्म जनता को दिया कि इस तम्बाकू की गन्दी आदत को सहन न करते रहना चाहिये। जिसका जन्म मूर्खता का स्वागत करता है, सच्चे मार्ग के भुलावे में डालने वाली बात है देखने में घृणित, सूंघने में घृणित, मस्तिष्क के लिये हानिकारक फेफड़ों के लिये संकट है। तम्वाकू से निकला धूआँ नरक से किसी प्रकार कम नहीं है, इन शब्दों में रोकने की घोषणा प्रसारित की गई।

प्रथम युद्ध के अनुभव से सेना मेडीकल ने निश्चय किया था कि धूम्रपान को बन्द करने के लिए सैनिक सहायता पूरा योग दे और दुर्व्यसन में फंसी कम्पनियाँ धूम्रपान निषेध में सहयोग करें।

भारत और धूम्रपान

प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि हमारे पूर्वज भारतवासी धूम्रपान के

व्यसनी नहीं थे न यहां पर तम्बाकू पैदा होती थी। भारत में तम्बाकू का आना अंग्रेजों के शासन काल में हुआ है। तब से ही खेती व्यापार आदि में प्रयोग होने लगा है आज भी देश में सिगरेट उत्पादन के कारखाने ८० फीसदी विदेशियों के हाथ में हैं। सबसे बड़ी कम्पनी में विदेशियों के ९२% शेयर हैं इसका तात्पर्य यह है कि भारतवासियों को दुर्व्यसनों में फंसाकर विदेशियों ने विशेष लाभ उठाया।

तम्बाकू के उत्पादन व खपत में सबसे प्रथम अमरीका है उसके बाद चीन और चीन के बाद हिन्दुस्तान का नम्बर है।

धूम्रपान से बल-बुद्धि-आयु, धन-धर्म का नाश होता है

बलका नाश—बल मनुष्य के शरीर में वह जीवन शक्ति है जिसका आधार वीर्य और प्राण हैं यह दोनों शक्तियां धूम्रपान से नष्ट होती हैं। वीर्य नसनाड़ी मज्जादि में बसा हुआ है वह धूम्रपान की उष्णता से पतला होकर स्वप्नदोष, प्रमेह मधुमेह द्वारा क्षीण होने लगता है और मादक द्रव्यों के सेवन से स्नायु इन्द्रियों में उत्तेजना पैदा होती है उससे मन दूषित होने पर मनुष्य कुवासनाओं द्वारा विषयों में लिप्त हो जाता है। विषयी मनुष्य का शक्तिहीन होना स्वाभाविक है, धूम्रपान भाँग शराब आदि सेवन करने वालों का वीर्य दोष युक्त होने से उनकी सन्तान पर बुरा प्रभाव पड़ता है और सन्तान अस्वस्थ अल्प आयु वाली होती है।

प्राण का नाश—स्वस्थ मनुष्य के श्वाँस एक मिनट में १४।१५ खर्च होते हैं और नशा आदि दुर्व्यसनी मनुष्य की श्वाँस एक मिनट में ३५।४० तक खर्च होते हैं और धीरे-धीरे प्राण क्षीण होकर मनुष्य का साथ छोड़ देते हैं। यह स्वाभाविक है कि दूषित आहार व्यवहार से शक्ति और आयु मनुष्य की नष्ट होकरदुर्गति होती है, और सात्विकी पदार्थ अन्न दूध फल आहार तथा सादा जीवन सदाचार से शक्ति आयु दीर्घ होकर सद्गति होती है।

बुद्धि का नाश

बुद्धि शुद्ध पवित्र सात्विकी पदार्थ परमात्मा ने मनुष्य के लिये ज्ञान ग्रहण करने का साधन दिया है और वह दूध फल अन्नादि सात्विकी खाद्य पदार्थों के सेवन से शुद्ध स्वच्छ पुष्ट रहती है और सत्य ज्ञान से निर्मल होती है। शुद्ध बुद्धि होने से ही मनुष्य अपना हित अहित सोचने में तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, प्राप्ति के जानने में समर्थ होता है। दूषित खाद्य पदार्थ या मादक द्रव्यों के सेवन से बुद्धि कुबुद्धि अज्ञान मय हो जाती है, और मूढ़ मनुष्य अपना भला बुरा सोचने में समर्थ नहीं होता तथा उत्थान के मार्ग से पतित हो कर दुर्गति प्राप्त करता है।

"बुद्धि लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते" शार्ङ्गधर ४।२१ मदकारी द्रव्यों के सेवन से बुद्धि कुंठित मूढ़ हो जाती है।

डाक्टर रोगी का औपरेशन करते समय ज्ञान शून्य होने के लिये जहर का इन्जेक्शन देते हैं उसी प्रकार धूम्रपान का निकोटिन जहर बुद्धि की ज्ञान शक्ति निरन्तर मंद करता है। आपने देखा होगा कि भांग-चण्डू-शराब पीने वाले चार-चार, छै-छै घन्टे बेहोश मृतक दशा में पड़े रहते है और बुद्धि खोकर क्या २ दुष्कर्म नहीं करते यह अकथनीय है। मनुष्य पैसा खर्च करके पागल बनता है। धूम्रपान से बुद्धि अंधकारमय काली हो जाती है, और जहर के उबालों से बुद्धि ज्ञान शून्य हो जाती है तथा आध्यात्मिक उत्थान से मनुष्य वंचित हो जाता है।

आयु का नाश

नशा करने वालों की आयु हर समय मृत्यु की तरफ दौड़ रही है परन्तु वर्तमान दशा का सही ज्ञान न होने से मनुष्य दिन प्रति दिन हानि उठाता हुआ भी अपने को आनन्दित अनुभव करता है, जब नशा करते, करते दो चार साल गुजर जाते हैं तब शरीर पर जहर का प्रभाव पड़ने से खाँसी, दमा, तपेदिक, केन्सर आदि रोगों का आक्रमण होने लगता है और बढ़ते बढ़ते मृत्यु का ग्रास बन जाता है। डाक्टरों ने सिद्ध किया है कि तम्बाकू में बाईस प्रकार के जहर हैं जिसमें सबसे तेज "निकोटिन" जहर है जो किसी प्रकार से शान्त नहीं होता जो जीवन शक्ति पर धीरे धीरे घात करता रहता है, एक पैकिट निरन्तर सिगरेट पीने वाले की आयु में से बीस साल कम कर देता है यानी स्वस्थ मनुष्य ८० साल जीने वाला ६० साल की आयु में मौत का शिकार हो जाता है।

अमरीका वालों ने सिगरेट के पैकिट पर "जहर है सावधान रहें" लिखना अनिवार्य कर दिया है इस घोषणा पर करीबन २ करोड़ ३० लाख जनता ने धूम्रपान त्याग कर दिया। अतः प्रत्येक विचार शील पुरुष को समय रहते सावधान हो जाना चाहिये।

समय का नाश—धूम्रपान आदि नशा करने वालों का समय ज्यादातर व्यसन के प्रयोग में खर्च होता। शरीर में शिथिलता कमजोरी अनुभव होती है, शक्ति प्राप्त करने को सिगरेट आदि का प्रयोग करता, है, परन्तु शक्ति प्राप्त न होकर ह्रास निरन्तर होता है, गांवों में हुक्का तम्बाकू पीने वाले चार-चार छै-छै इकट्ठे होकर दो-दो घन्टे तक समय खोकर बेकार की एक दूसरे की निन्दा उपहास करते हुये वैमनस्यता की आधार शिला का बीज बोते हैं, और वह किसी समय उग्ररूप धारण करके विनाश का कारण बनती है।

धन का नाश

भारत की आबादी इस समय पचास करोड़ के क़रीब मानी जाती है जिसमें से एक चौथाई धूम्रपान करने वाले माने जाँय तो १२॥ करोड़ शेष रहते हैं। जब कि यात्रा, रेल, बस, मेला, बाजार आदि में पीने वालों की संख्या ७५ फी सदी देखने में आती है।

इन साढ़े बारह करोड़ व्यक्तियों में ऐसे व्यक्ति जो सिर्फ बीड़ी तम्बाकू पीने वाले हैं, आठ करोड़ मानलें जिनका खर्च औसतन २५ पैसे प्रति व्यक्ति का मानें तो दो करोड़ रुपया रोजाना का खर्च होता होगा। बाकी साढ़े चार करोड़ सिगरेट पीने वाले हैं जिनमें खर्च साठ पैसे से लगाकर दो-दो रुपये खर्च करने वाले हैं। अगर हर व्यक्ति का एक रुपया मानलें तो साढ़े चार करोड़ रुपया रोजाना का खर्च होगा, इन दोनों को मिलाकर साढ़े छः करोड़ रुपया रोजाना व एक माह का १९५ करोड़ तथा एक साल का २३ अरब ४० करोड़ रुपया होता है।

इसके अलावा भाँग गाँजा चरस अफीम इत्यादि में करोड़ों रुपया खर्च होता है। इसके आँकड़े इनमें सम्मिलित नहीं हैं।

अग्नि से हानि

बैसाखकी फसल कटने के बाद किसान मिलकर एक जगह खलिहान डालते हैं उसके पास तम्बाकू पीने की मर्ज से एक जगह अग्नि रखते हैं। वैसे अग्नि रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी, फिर भी आदत से मजबूर होकर बीड़ी सिगरेट दियासलाई तथा तम्बाकू पीने के साधन रखते हैं। कभी-कभी अग्नि के प्रकोप से खलिहान का हजारों मन गल्ला भूसा व फसलें तथा लाखों रुपये की सम्पत्ति और गाँव के गाँव बरबाद हो जाते हैं। चाहिये तो यह था कि खलिहान की रक्षा के लिये दस बीस घड़े पानी के हर समय वहां पर रखते। यह कार्य बुद्धि का था, परन्तु यह न करके उलटा अग्नि का सेवन करते हैं।

सन् १९५०।५१ में एक करोड़ ११ लाख ६ हजार एकड़ जमीन पर तम्बाकू बोई गई। वह बढ़कर सन् १९६१।६२ में एक करोड़ ५८ लाख ४८ हजार एकड़ जमीन पर बोई गई इस अनुपात से करीबन दो करोड़ एकड़ जमीन पर तम्बाकू सन् १९६९-७० में बोई गई होगी।

अगर इस जमीन पर गेहूँ बोया जाता तो सरकारी रिपोर्ट के अनुसार प्रति एकड़ ६०,७० मन होता है फिर भी इतना न मान सिर्फ २५ मन गेहूं प्रति एकड़ मानलें तो ५० करोड़ मन गेहूँ पैदा होगा जोकि ३० रुपये मन से १५ अरब रुपये का होता है और उसके अलावा १ अरब मन भूसा होगा जोकि २

रुपये मन से तीन अरब का होता है कुल मिलाकर १८ अरब की सम्पत्ति प्राप्त होगी ।

अगर शासन सत्ता तम्बाकू बुवाई पर रोक लगाकर अन्न उत्पादन कराने लगें तो भारत अन्न और चारे से भरपूर हो जावे । खाद्य की सारी समस्या तथा पशु पालन गौ सम्वर्धन की सारी समस्या अन्न दूध से भरपूर हो जावे, और भारतवासी दुर्व्यसन सर्वनाश से छुटकारा पाकर धन धान्य बल बुद्धि ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जावें, यथार्थ रामराज्य स्थापित हो जावे ।

शराब से हानि

अब हम मिलकर शराब से होने वाली राष्ट्र की हानि पर विचार करें, इसकी सही-सही जानकारी तो नहीं हो सकी है क्योंकि इसकी व्यापकता बहुत फैली हुई है और चोरी छिपे व्यापार देश में तथा विदेशों से बहुत हो रहा है फिर भी जो आँकड़े प्राप्त हैं, वह आपकी सेवा में उपस्थिति किये जाते हैं।

२८ नवम्बर सन् १९५१ डेलीन्यूज में प्रकाशित हुआ कि न्यूयार्क राज्य में ५ लाख ८५ हजार मद्यपी हैं जिसके कारण उद्योगों में प्रतिवर्ष १० करोड़ ६० लाख घन्टों की कार्य हानि से राष्ट्र को १ अरब ४० करोड़ डालर की हानि होती है । मद्यपी मूढ़ता व दुष्कर्मों में प्रवृत्त होकर अपना अमूल्य समय खोकर भारत की विशेष हानि करते हैं ।

यून्यार्क टाइम्स (यूनाइटेड प्रेस) ८ जुलाई सन १९५२ के अंक में प्रकाशित हुआ कि व्यावसायिक अर्थशास्त्र कार्यालय के अनुसार ९ अरब १५ करोड़ डालर की शराब अलकोहल आदि १५ करोड़ ३० लाख व्यक्तियों के पीने में व्यय हुई ।

कुछ समय पूर्व समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ था कि पंजाब सरकार को शराब के ठेकों से ३० करोड़ रुपये सालाना की और राजस्थान सरकार को ८॥ करोड़ रुपये की सालाना आमदनी होती है । इन दोनों प्रान्तों का जोड़ लगाकर औसत लगाई जाय तो १९ करोड़ रुपया एक प्रान्त को टेके से प्राप्त हुआ । यदि इतना न मानकर सिर्फ १५ करोड़ रुपया की सालाना आमदनी मानी जाय तो भारत के १६ प्रान्त तथा चार केन्द्र शासित प्रान्तों से करीबन ३ अरब रुपया भारत सरकार को प्राप्त होगा । जब तीन अरब ठेकेदार खर्च करते हैं तो इससे सिद्ध होता है कि ठेकेदार दुकानदार कम से कम दस गुना शराब की कीमत जनता से प्राप्त करते होंगे वह कीमत ३० अरब रुपया अवश्य होगी ।

इस प्रकार करीब ५०-५५ अरब रुपया बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि के नशे में प्रति वर्ष भारत की गरीब जनता खर्च करती है । इसके अलावा जो

धूम्रपान, नशे आदि से बीमारी पैदा होती हैं तथा अग्नि की घटनायें होती हैं। यदि उनका कुल अनुमान लगाया जाय तो यह राशि खरबों रुपये तक पहुँच जावेगी।

धर्म का नाश

जिस कर्म के करने से शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक और राष्ट्र की उन्नति तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति हो वह धर्म है और जिस कर्म के करने से उपरोक्त मोक्षादि की हानि होती हो वह अधर्म और पाप है।

अगर घर का स्वामी किसी प्रकार का नशा आदि का दुर्व्यसन करता है तो उसके छोटे भाई, पुत्र आदि सब सदस्य देखा, देखी दुर्व्यसन करने लगेंगे। यह रोग छूत की बीमारी की तरह परिवार, समाज और राष्ट्र में फैलता है।

अगर इस रोग का उपाय घर का स्वामी ज्ञान के द्वारा करे तो आगे चलकर परिवार, समाज एवं राष्ट्र के लिये हानिकारक नहीं हो, जैसा कि उपरोक्त जहाज के मल्लाह द्वारा ही पीने से तम्बाकू का प्रयोग सारे विश्व में होने लगा।

नशा करना अध्यात्मिक विषय नहीं--

आखें अच्छी वस्तु देखना चाहती हैं तम्बाकू देखने में सुन्दर नहीं। कान कर्ण प्रिय शब्द सुनना चाहते हैं तम्बाकू शब्द मधुर नहीं। जिह्वा स्वादिष्ट पदार्थ चाहती है, तम्बाकू स्वादिष्ट नहीं। त्वचाशीत, गर्म, कोमल स्पर्श चाहती है तम्बाकू में यह गुण नहीं। नासिका सुगन्धित वस्तु सूंघना चाहती है, तम्बाकू सुगंधित भी नहीं। मन चाहता है लुभावनी वस्तु को, तम्बाकू कोई मोहक नहीं।

आत्मा चाहता है ज्ञान और आनन्द तम्बाकू में न ज्ञान है न आनन्द। ज्ञान वेद से मिलता है आनन्द मिलता है परमात्मा ज्ञान से, इसलिये धूम्रपान आदि आध्यात्मिक विषय नहीं।

अगर मनुष्य आरम्भ में नशा करने से पूर्व बुद्धि से काम लेता तो कभी भी धूम्रपान आदि के दुर्व्यसन में नहीं फँसता क्योंकि यह किसी प्रकार भी लाभदायक नहीं हैं।

आत्मा की रक्षा और उत्थान के लिये शरीर प्राप्त हुआ परन्तु अज्ञान से मनुष्य इस शरीर रूपी मकान को निरन्तर जलाकर नष्ट करता है। आत्मा नहीं चाहती कि मेरे ऊपर धूम्रपान का आघात किया जाय अतः आत्मा न चाहता हुआ धूम्रपान को बाहर ढकेलता है, फिर भी मनुष्य धूम्रपान द्वारा उस पर आक्रमण करता है तो जीवात्मा घबड़ाकर छोड़ मृत्यु को प्राप्त होता है।

नशा, चोरी, जूआ, मांस व्यभिचारादि पाप कर्म त्याग दो

पाप कर्म वह कर्म है जिसके करने से मनुष्य अपना तथा देश का सर्वस्व खोदेता है फिर भी सचेत नहीं होता और बार-बार उसी कर्म को दुष्कर्म करने को प्रोत्साहित करते हैं या ऐसा कर्म करते हैं जिससे मनुष्य और प्राणी मात्र का अहित होता है वह "भहतृरि" की दृष्टि में महापापी राक्षस है।

"तेऽमीं मानुष राक्षसाः परिहितं स्वाथाप निघ्नन्तिये।

धूम्रपान शराब त्याग के उपाय

शराब त्याग—एक सेर अजमाइन पावभर हरा पोदीना या सूखा आध पाव ले, आठ सेर पानी डाल मिट्टी के बर्तन में भिगोकर आठ दिन बाद मलकर भवके द्वारा उसका अर्क निकाल लें बोतल में रक्खें। उस में से भोजन के बाद २ तोले सेवन करें। यह स्वादिष्ट अर्क शराब की आदत को धीरे-धीरे छुड़ाने में समर्थ होगा। दूध घी प्रयोग करें एवं दृढ़ प्रतिज्ञा रक्खें कि किसी प्रकार भी शराब सेवन नहीं करनी है।

भाँग त्याग—भाँग के साथ ब्रह्मी बराबर की लें फिर धीरे ब्रह्मी पत्ती की मात्रा बढ़ाते जाँय और भाँग कम करते जाँय और बादाम मिर्च आदि मसाला डालते रहें, धीरे-धीरे भाँग पीना छूट जायगी, भाँग से बुद्धि मूढ़ होती है। ब्रह्मी से बुद्धि सूक्ष्म होकर तीव्र होगी। दूध घी मधु सेवन करते रहें।

बीड़ी सिगरेट त्याग—बीड़ी सिगरेट तम्बाकू त्याग के लिये सौंफ २) भर, अजमाइन २) भर, काला नमक १) भर नमक को महीन पीस कर नीबू के रस में घोललें, इस घोल में सोंफ, अजमाइन मिलाकर गर्म तवे पर भूनलें। खुशबू आने पर नीचे उतार लें। डिब्बी में रक्खें, और १५-२० दाने मुँह में डालते रहें। इससे मुँह का जायका ठीक रहेगा। बलगम साफ होगा। पेट में ठीक हाजमा रहेगा। मुँह से दुर्गन्धि की जगह सुगन्धि आयगी। दृढ़ प्रतिज्ञा रक्खें कि किसी तरह मुझे बीड़ी आदि नहीं पीनी है।

आप दुष्ट व्यसन से छुटकारा पा जावेंगे।

समस्त मनुष्यों का कर्तव्य है कि दूषित कर्मों का विरोध कर संसार को सुखमय बनाने का प्रयत्न निरन्तर करते रहें। ●

एकता

—डा० पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश'

—:०:—

चाहता है देश यदि
ऐश्वर्य और समृद्धि।
तो करे एकाग्र मन से
एकता की वृद्धि॥

एकता है राष्ट्र की गति का
प्रगति का मान।
एकता है एक मात्र
विकास की पहचान॥

एकता है मधुर मुरली की
मनोहर तान।
बांधती जो राग के स्वर से
सभी के प्राण॥

एकता है राष्ट्र की आन्तरिक
जीवन शक्ति।
एकता बलि-भावना की
है सबल अभिव्यक्ति॥

एकता से शत्रु रहते हैं
सदा भयभीत।
एकता है जहां, निश्चित है
वहां पर जीत॥

एकता है स्वावलम्बन का
अमोघ उपाय।
एकता है चारु चिंतामणि
सुभंग सुरगाय॥

एकता संजीवनी पा
अमर होता देश।
एकता से पास आता
नहीं कोई क्लेश॥

एकता है सुख प्रजा का
एकता कल्याण।
एकता से विश्व-भर में
राष्ट्र का सम्मान॥

एकता को जो बनाता
पथ का पाथेय।
खोजता आता स्वयं ही
पास उसके ध्येय॥

रात दिन जपते रहो सब
एकता का मंत्र।
फूट से कलुषित न हो पाए।
हमारा तंत्र॥

युद्ध : महाभारतका ऐतिहासिक है--

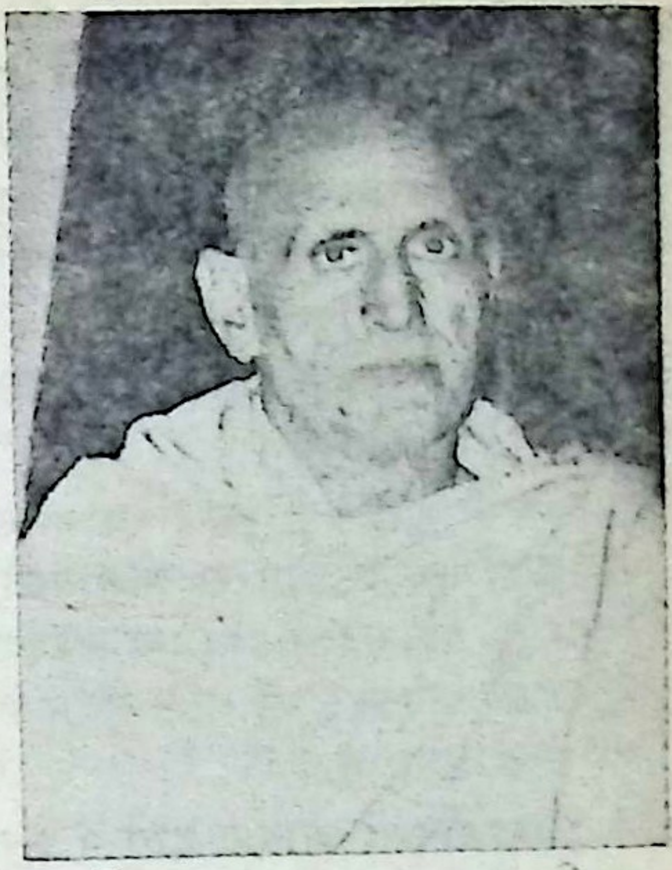

लेखक :
आर्यसमाज के आदर्श संन्यासी
श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती

अनेक विद्वानों का मत है कि महाभारत का युद्ध कोई एक घटना विशेष से सम्बन्धित नहीं है, अपितु यह विभिन्न कालों में हुई अनेक घटनाओं का समूह है। इसमें तर्क यह दिया जाता है कि विद्वान् लोग महाभारत युद्ध की कोई निश्चित् तिथि न मानकर विभिन्न तिथियां मानते हैं, अत: जिस महाभारत युद्ध की विभिन्न तिथियाँ मानी जाती हैं, वह एक काल में हुई एक घटना नहीं हो सकता। इसी प्रकार उन्होंने यह भी सिद्ध करने का यत्न किया है कि कौरव-पाण्डव आदि एक कुल के नहीं थे। इतना सब लिखते हुए कतिपय विद्वानों ने अपने लेख में कोई भी ऐतिहासिक और ठोस प्रमाण नहीं दिया है।

यह सर्वमान्य है कि संवत् उसी का चलता है, जिसकी सत्ता (विद्यमानता) रही हो, जैसे यह सृष्टि उत्पन्न हुई तो इसका संवत् चला, जिसे सृष्टि संवत् कहते हैं। इसी प्रकार युधिष्ठिर संवत्, कलिसंवत्, विक्रमसंवत्, मूसा का ईसवी, शक संवत् आदि हैं। ये सभी इनकी सत्ता को सिद्ध करते हैं। कलि संवत् को ही युधिष्ठिरी संवत् कहते हैं। पाण्डव संवत् भी इसी का नाम है। वराहमिहिर कृत 'बृहत्संहिता', 'आइने अकबरी', माधवाचार्य कृत 'राजावली,' द्वारका मन्दिर के ताम्रलेख और बूंदी-स्थित स्तोर ग्राम के शिलालेख से यह सुतरां सिद्ध है।

'आइने अकबरी' में लिखा है—"कलियुग के आरम्भ होते ही पहला राजा युधिष्ठिर हुआ, जिसको (अकबर तक) ४६९६ वर्ष हो चुके हैं और विक्रम तक

३०४४ वर्ष होते हैं।" (इसके अनुसार अब वर्तमान २०२८ विक्रम संवत् तक युधिष्ठिर को ५०७२ वर्ष होते हैं)।

इसी प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी महाभारत युद्ध के पश्चात् कलियुग के प्रारम्भ में जो राजा हुए हैं, उनमें सर्वप्रथम युधिष्ठर को ही माना है। महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश, में जो राजवंशावली दी है, उसके अनुसार महाराज युधिष्ठिर से लेकर महाराज यशपाल पर्यन्त अर्थात् कलियुग के प्रारम्भ से विक्रम संवत् १२४९ तक ४२९३ वर्ष व्यतीत होते हैं। एतदनुसार भी आज विक्रम संवत् २०२८ तक युधिष्ठिर संवत् अथवा कलि संवत् को ५०७२ वर्ष होते हैं।

अभी कुछ वर्ष पूर्व हरियाणा सरकार के भाषा विभाग को डोगरी लिपि में लिखी एक प्राचीन राजवंशावली मिली है, उसमें राजाओं का जो कालमान दिया है, वह महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित काल से ही मिलता-जुलता है, उसके अनुसार भी आज संवत् २०२८ विक्रम् तक युधिष्ठिर संवत् ५०७२ ही सिद्ध होता है।

'राजावली' नामक ग्रन्थ में सुप्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्रज्ञ पं० माधवाचार्य ने लिखा है—"कलियुग के आरम्भ से विक्रम् तक ३०४४ वर्ष होते हैं। कलियुगी संवत् ३०४४ में विक्रम का राज्य आरम्भ हुआ और संवत् ३१७९ में शालवाहन का राज्य आरम्भ हुआ।" इसके अनुसार भी वर्त्तमान १८९३ शक संवत् तक कलियुगी संवत् को ५०७२ वर्ष व्यतीत होते हैं।

इसके अतिरिक्त बूंदी के अन्तर्गत स्तोर ग्राम में विद्यमान पाषाण लेखों का परीक्षण सर विलियम म्यूर साहिब ने करवाया था। उनके मतानुसार इस लेख में भी युधिष्ठिरी संवत् लिखा है।

एक बार सूरत के एक मन्दिर में दो शंकराचार्यों का शास्त्रार्थ हुआ था। उस शास्त्रार्थ में द्वारका के मन्दिर से प्राप्त एक ताम्र लेख दिखाया गया था। उस लेख की तिथि २६६३ युधिष्ठिरी संवत् में दी हुई है। वह लेख ईसा मसीह से ४३८ वर्ष पूर्व लिखा गया था। इस लेख के अनुसार भी वर्तमान ईसवी संवत् १९७१ तक युधिष्ठिरी संवत् के ५०७२ वर्ष व्यतीत होते हैं।

ऐसे ही अन्य भी अनेक प्रमाण हैं, जिनसे कलिसंवत् अथवा युधिष्ठिरी संवत् का काल नितान्त एक-सा और निश्चित है। अतः महाभारत युद्ध काल को अनिश्चित कहना बुद्धिसंगत नहीं है।

इन लिखित प्राचीन प्रमाणों के अतिरिक्त पुरात्विक और ऐतिहासिक प्रमाण भी हैं, जिनसे सिद्ध है कि महाभारत का युद्ध एक ऐतिहासिक युद्ध था और वह एक ही समय की घटना थी, तथा कौरव-पाण्डव आदि भी समकालीन थे और यह युद्ध कौरव-पाण्डव तथा उनके ही सहयोगियों में हुआ था।

महाभारत युद्ध के निकटवर्ती समय में जो ग्राम और नगर विद्यमान थे, उन में से अनेक आज भी उसी नाम से अथवा कुछ नामभेद (विकृत नाम) से विद्यमान हैं। इसी की पुष्टि में कुछेक प्रमाण नीचे दिये जाते हैं।

महाभारत नामक ग्रन्थ में जो कथा वर्णित है, वह आज तक ज्यों की त्यों भारत के सभी प्रान्तों में जन श्रुति के रूप में विद्यमान हैं। यदि महाभारत युद्ध का अस्तित्व नहीं होता तो यह जनश्रुति सर्वत्र क्योंकर मिलती ? महाभारत का युद्ध कुरुक्षेत्र के मैदान में हुआ था। यह युद्ध कलियुग प्रारम्भ से ३६ वर्ष पूर्व हुआ था। तद्नुसार महाभारत युद्ध को आज विक्रम संवत् २०२९ में ५१०९ वर्ष व्यतीत होते हैं। सभी प्रमाणों से यही काल निश्चित है।

महाभारत में नकुल की पश्चिम दिग्विजय में रोहीतक, शैरिशक, और महेत्थम का वर्णन है, सो इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के पश्चिम में रोहतक, सिरसा और महम आज भी विद्यमान हैं। महाभारत का युद्धस्थल कुरुक्षेत्र तो आज तक उसी नाम से ही है। युद्ध के अन्तिम दिन जब दुर्योधन तालाब में छिपा था और उसे ढूंढने के लिये युधिष्ठिर, कृष्ण आदि गये थे, उस स्थान का नाम ढूंढू जोहड़ और ईकस आज तक भी है। संस्कृत के "ईश दर्शने" धातु से विकृत होकर यह 'ईकस' शब्द बना है।

महाभारत में वर्णित परशुराम ने जिस तालाब में अपना परशु धोया था, वह राहमद भी आज रामरा नाम से प्रसिद्ध है। पाण्डु के नाम से पाण्डुपिण्डारा और पाण्डुखरक भी विद्यमान हैं, जो कि कौरव-पाण्डवों की सत्ता के द्योतक हैं। पाण्डवों का किला भी इसी की पुष्टि करता है। महाभारत के इन्द्रप्रस्थ से तो आज सभी परिचित हैं ही। विराट के महाराज की गायें कौरवों ने इसी लिये भगाई थीं कि अज्ञातवासी पाण्डवों का पता चल सके। उन गायों को पाण्डवों ने जिस स्थान पर छुड़ाया, वहाँ आज छुड़ानी नाम का ग्राम विद्यमान है, यह बहादुरगढ़ और झज्जर के मध्य है।

द्रोपदी की जन्मभूमि अहिच्छत्र (पाण्चाल प्रदेश) आज भी खण्डहर रूप में विद्यमान है। पाण्डवों की राजधानी कौशाम्बी (प्रयाग) भी आज ध्वस्त रूप में पड़ी हैं। महाभारत में वर्णित योधेय, कुणिन्द आर्जुनायन, वृष्णि आदि गणों की मुद्रायें आज भी प्राप्त हैं। इसी प्रकार बहुधान्यक प्रदेश का वर्णन भी महाभारत में आया है, जिसके नाम वाले यौधेयों के सिक्के आज भी उस प्रदेश की सत्ता जतला रहे हैं। जब महर्षि वेदव्यास रचित इस महाभारत ग्रन्थ में उल्लिखित ये सब तथ्य प्रस्तुत हैं तो उसी में वर्णित कौरव-पाण्डव और उनका युद्ध अनैतिहासिक कैसे हो सकता है ? कैसे उसकी सत्ता को अस्वीकार किया जा सकता है ?

इसी प्रकार पाण्डवों ने दुर्योधन से जो पाँच ग्राम मांगे थे वे भी आज

किंचन्नाम भेद से देखे जा सकते हैं । बिना इन ऐतिहासिक तथ्यों की खोज किये महाभारत युद्ध और कौरव पाण्डवों की अनैतिहासिकता की घोषणा करना ठीक नहीं है ।

महाभारत के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि श्री कृष्ण और कौरव-पाण्डव आदि का परस्पर रक्त का सम्बन्ध भी था । महर्षि व्यास ने श्री कृष्ण को बार बार वार्ष्णेय (वृष्णिकुलोत्पन्न) नाम से सम्बोधित किया है । इसी वृष्णिकुल की कुछ प्राचीन मोहरें मुझे प्राप्त हुई हैं, जिनसे इस कुल की सत्ता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है । यदि यह कुल न होता तो इसकी मोहरें कहां से आतीं । यदि इसी भांति इन्द्रप्रस्थ, पाण्डुकिला, अहिच्छत्र और कौशाम्बी आदि की पूर्ण खुदाई करवाई जाए तो कौरव-पाण्डवों से सम्बन्धित विशिष्ट सामग्री भी मिल सकती है । जैसे कि अहिच्छत्र से कौरव-पाण्डव युद्ध के दृश्यों से अंकित विशाल मृण्मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं जो कि महाभारत युद्ध की वास्तविकता का ठोस प्रमाण हैं ।

"अमरीकी राष्ट्रपति निक्सन की राय में 'युद्ध' और 'नर-संहार' में क्या अंतर है ?"

"जब अमरीकी सेना की डिवीजनें मुट्ठी भर वियतनामी नागरिकों की हत्या करती हैं तब वह 'युद्ध' होता है, और जब बाँगला देश के मुट्ठी भर नागरिक आधुनिक अस्त्र-शास्त्रों से लैस पाकिस्तानी सैनिकों के अत्याचारों का मुकाबला करते हैं तो उसे 'नर-संहार' कहा जाता है ।"

एक अमरीकी तथा एक चीनी अपनी-अपनी नावों पर सैर कर रहे थे । अचानक अमरीकी की नाव उलट गयी और वह पानी में गोते खाने लगा । जब वह तीसरी बार सतह पर उभरा तो चीनी ने पूछा, "मेरे परम मित्र, यदि तुम चौथी बार न उभर सको, तो क्या मैं तुम्हारी नाव ले जा सकता हूँ ?"

मनुष्य जितना छोटा होता है उसका अहंकार उतना ही बड़ा होता है ।

—डा० जी० एस० सैनानी

एम. डी., एम. आर. सी. पी.

हृदय रोग पर विजय कैसे ?

इनदिनों हृदय रोग की पीड़ा एक आम बीमारी और हृदय गति रुकने से मृत्यु एक रोजमर्रा की बात हो गई है । इस वर्ष विश्व स्वास्थ्य संस्था के तत्वावधान में "हृदय रोग" से जनता को परिचित व सचेत किया जा रहा है ।

हृदय रोग आधुनिक सभ्यता की एक देन है और अनुसंधानों से बड़े चमत्कृत कर देने वाले तथ्य उसके संभावित कारणों के रूप में सामने आ रहे हैं । भारी संख्या में हृदय रोग के पीड़ितों व मृत्युओं के बावजूद आम आदमी को इस रोग की भयंकर व गंभीरता के बारे में बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है । भोजन व रहन-सहन के स्तर के संबन्ध में अनेक भ्रांतियां व्याप्त हैं ।

हृदय रोग चिकित्सा से संबन्धित एक चिकित्सक होने के नाते मैं अनुभव करता हूं नागरिकों को इस रोग के प्रति सचेत करना व कुछ तथ्यों व कार्यों से परहेज करने के प्रति जागरूक किया जाये । क्या यह अधिक अच्छा नहीं होगा कि प्रारम्भ से ही नागरिक हृदय रोग के प्रति उचित सावधानी बरतें और हर समय यह प्रयास करें कि प्राणघातक रोग आपके निकट न आ सके ।

यदि आपकी छाती में दर्द की शिकायत हो या पूर्व में हृदय रोग का आघात हो चुका है तो आप निम्न बातों की ओर गंभीरता से ध्यान दें, कड़ाई से इन पर अमल करना चाहिये ।

भोजनः-

हृदय रोग का एक प्रमुख कारण आवश्यकता से अधिक चर्बीयुक्त भोजन है । एक आम स्वास्थ्य व्यक्ति को एक दिन में अपनी कुशलता एवं शक्ति बनाये रखने के लिये २००० कैलोरीज की जरूरत होती है । जब भोजन, चाय,

मीठा व अच्छे पेय, मद्यपान की अधिकता हो जाती है तो जरूरत की कैलोरीज के बाद की अतिरिक्त कैलोरीज चर्बी या मोटापे के रूप में आपके शरीर पर जमती जाती हैं और हृदय पर उसका दबाव बढ़ता जाता है। हृदय का मुख्य व मूलभूत कार्य व शरीर की शिराओं व धमनियों में बह रहे रक्त को खींच कर उसे पुनः शुद्ध कर धमनी व शिराओं द्वारा वापस मांसपेशियों में भेजना होता है। प्राकृतिक रूप से हृदय में आवश्यकतानुसार रक्त सिंचन व शोधन शक्ति है और संतुलित शरीर को हृदय अपनी आसान क्षमता से कुशलतापूर्वक रक्त पूर्ति का कार्य करता है।

अतिरिक्त चर्बी जीवित मांसपेशियों (लाइव्ह टिशूज) होती हैं और फलस्वरूप उनकी मांग की पूर्ति भी हृदय को करनी पड़ती है। अतः जब हृदय अपनी क्षमता से अधिक और अतिरिक्त कार्य करता है तो उस पर लगातार बढ़ते दबाव का प्रभाव होता है और अपनी शक्ति क्षीण हो जाने के कारण समय से पहले ही काम करना बंद कर देता है और व्यक्ति की मृत्यु हृदयगति रुक जाने से हो जाती है—

अतिरिक्त मांसपेशियों या चर्बी को रक्त पूर्ति करने की तुलना एक बहुमंजिल भवन को जलपूर्ति करने वाले पानी के पम्प से कीजिये। यदि वह पम्प चार मंजिलों तक ही पानी पूर्ति के योग्य है तो वह चार मंजिलों तक ही आसानी से पानी को पूर्ति करेगा। यदि आप उस पर और दो मंजिलों के पानी पूर्ति का बोझ डाल देंगे तो वह घरघरा कर ठप्प हो जायेगा। यही स्थिति हृदय की है और उस पर मानव जीवन आधारित है। अतः हृदय पर तिनके के बराबर भी अतिरिक्त बोझ डालने से बचिये क्योंकि एक तिनका भी अतिरिक्त बोझ आपकी मृत्यु को उतना और निकट ला सकता है।

क्या नहीं खाइये

अतः जीवनडोर को सुदृढ और लंबी बनाये रखने के लिये घी, मक्खन, मलाई वनस्पति घी (डालडा आदि) पेस्ट्रीज, केक्स, आईस क्रीम्स, तले भोजन जैसे पूड़ी, कचौड़ी, समोसा, भजिया, आलूबोंडा, सेव-चूड़ा, परांठे, कटलेट और अण्डे इत्यदि खाना त्याग दीजिए।

आप यह खा सकते हैं

आप सादा व चर्बीहीन भोजन अपनाइये। बगैर घी की सुखी रोटी या चपाती. थोड़ा सा चावल, डबलरोटी, थोड़ा सा आलू, भर पेट हरी सब्जी, मटर, फल्लियां, खूब खाइये। बगैर मलाई का दूध और मक्खन निकाला हुआ छाछ पीजिये।

भोजन बनाने में घी या वनस्पति का उपयोग न करें। भोजन बनाने में

करडी, सोयावीन, तिल, अलसी और मूंगफली के तेल का उपयोग कीजिये।

भोजन की मात्रा

कभी एक बैठक में खूब ठसाठस पेट भर और तोंद वाहर निकले तक भोजन न कीजिये। थोड़ा-थोड़ा जरा-सी मात्रा में बीच-बीच में कुछ हिस्सों में भोजन कीजिये। एक साथ चार रोटी व चावल खाने के बजाय चार बार एक-एक रोटी व पांचवी बार रोटी खाइये। रात में बहुत देर से भोजन की आदत एकदम त्याग दें। दिन ढलने के बाद रात सात बजे के पहले ही रात का भोजन निपटा डालिये। रात के भोजन व सोने के बीच कम से कम तीन घंटे का अंतर अवश्य हो।

धूम्रपान

धूम्रपान वंद कर दें और किसी भी रूप में तम्बाखू सेवन न करें।

मद्यपान

यदि आप शराव के आदी ही हो गये हैं तो शराब को कम से कम करने का प्रयास करें। यदि आप शराब बिलकुल नहीं छोड़ सकते हैं तो रोग से भी आप नहीं छूट सकते।

चाय-काफी

कम से कम अनिवार्य आवश्यकतानुसार ही लीजिये।

हाजमा

एक बात को गंभीरता से ध्यान दें कि आपको अपचन या कोष्ठवद्धता की शिकायत नहीं हो। यदि हाजमा बराबर न हो तो कभी-कभी बीच-बीच में हल्का-सा पाचक या जुलाव लीजिये।

शरीर का वजन

अपने वजन का एक नियमित रेकार्ड रखें और एक निश्चित अवधि के बाद वजन करते रहें। यदि वजन बढ़ता है तो उसे घटाने का उपाय कीजिये।

थकावट व नायट्रोग्लीसरीन

हर ऐसे कार्य व गतिविधियों को त्याग दीजिये जिससे आपके सीने में दर्द की शिकायत हो। किसी भारी शारीरिक कार्य व मानसिक थकावट के कारण आपको लगे कि छाती में दर्द उठ सकता है तो अपने मुंह में नायट्रोग्लीसरीन की एक गोली रख लीजिये जिनके कारण दर्द उठा या उठ रहा था और उन कारणों को भविष्य में टालिये। यदि ५ मिनट में छाती का दर्द कम न हो तो नायट्रोग्लीसरीन की दूसरी गोली खाइये। इसके बाद भी यदि दर्द कम न हो या बंद न हो तो चुपचाप लेट जाइये, अधिक गोलियां न लीजिये और तत्काल अपने डाक्टर को बुलवाइये।

कैलोरीज और व्यवसाय

कैलोरीज और आपके व्यवसाय के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक आम मजदूर को ३५०० कैलोरीज की जरूरत हो सकती है तो क्लर्क या उसके जैसा हल्का दिमागी कार्य करने वाले को २५००। एक व्यापारी या मैनेजर को २००० की तो एक धनाढ्य, एयरकंडिशन कमरे में बैठने वाले शारीरिक श्रम न करने वाले को १५०० कैलेरीज की जरूरत है। इसके लिये अपने डाक्टर से विस्तृत जांच करा कर कैलोरीज की मात्रा जान लीजिये।

जितनी जरूरत है उससे जरा कम कैलोरीज लीजिये। वजन घटाने का यह सबसे बढ़िया उपाय है। जब आप भूख से कम मात्रा में भोजन करेंगे तो शरीर की आवश्यकता पूर्ति के लिये शरीर के अवयव आपकी अतिरिक्त चर्बी को पचाने लग जायेंगे और इस तरह चर्बी कम भोजन के कारण स्वतः ही कम होती जायेगी व वजन घटता जायेगा। वजन घटाने के लिये हजम करने वाले अवयवों को भोजन पचाने से आराम दीजिये जिससे वह आपकी चर्बी को पचाने के लिये समय निकाल सके और आपको दुबला कर स्वस्थ व तरोताजा बना दें।

यदि आपका व्यवसाय श्रमपूर्ण कार्य है जिससे दर्द का दौरा बार-बार आता हो तो कार्डिक सेंटर में दिखा कर अपनी जांच करा अपने योग्य उचित मात्रा का कार्य व अन्य गतिविधियां निश्चित करा लें। लगातार कई घंटे भारी मेहनत का कार्य न कीजिये। दोपहर में थोड़ा आराम लाभकारी होता है। प्रतिदिन सुबह व शाम पैदल चलने से काफी लाभ होगा। प्रायः भोजन के तुरंत बाद काम शुरू कर देने से सीने में दर्द होता है, अतः भोजन के बाद कुछ क्षणों के लिये विश्राम अवश्य कीजिये।

जीवन के प्रति रुख

हृदय रोग से बचने के लिये जीवन के प्रति दार्शनिक रुख रखिये। गरम बहस और उत्तेजित होने वाले वादविवाद टालिये। सदैव शांत, ठंडे व हंसमुख रहिये व संकट की घड़ी में निराशा या उत्तेजना को निकट न आने दें। संकट पर धैर्य व शांति से विचार करें तनावपूर्ण स्थिति में मानसिक तनाव हटाने वाली दवाई या गोली से लीजिये। योगासन करने का प्रयास करें।

नींद

६ से ८ घंटे नींद गहरी व अच्छी नींद लाने वाली दवाई का उपयोग करें।

डाक्टर से सम्पर्क

जब कभी भी आपको कोई संदेह हो अपने डाक्टर या हृदय विशेषज्ञ से सम्पर्क कीजिये।

हृदय रोग बहुत जटिल अवश्य है किन्तु उस पर आप अपने संयम शांति व प्रयासों से विजय प्राप्त कर सकते हैं।

—आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

मदिरापान और धर्म शास्त्र

मदिरापान व्यसन बढ़ता हुआ स्वास्थ्य के साथ-साथ हमारे मानसिक पतन का भी कारण बन रहा है। इस सबंध में पढ़िए........धर्म शास्त्रों का मार्ग दर्शन —संपादक

मनुष्य उसी को कहते हैं जो मननपूर्वक सोच-विचार कर प्रत्येक कर्म करे। इस बात के मानने में तो किसी को इन्कार हो ही नहीं सकता कि शराब एक मदकारी अर्थात् नशीली वस्तु है। मदकारी वस्तु की परिभाषा "शार्गंधर" में निम्न रूप से दी गई—"बुद्धि विलुम्पति यत् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते"। जो मानव की बुद्धि का लोप अर्थात् विनाश करती है उसको मदकारी या नशीली वस्तु कहते हैं। लोक में भी प्रसिद्ध है कि "शराब अन्दर अक्ल बाहर"। अब जिसकी बुद्धि ही ठीक न रहे, न ही सम्यक् प्रकार से विचार करके कार्य कर सके, उसे हम मनुष्य कैसे कह सकते हैं? अतः मनुष्य को ऐसे नशीले द्रव्यों अर्थात् नशीली वस्तुओं का कदापि सेवन नहीं करना चाहिए, जिससे उसके मस्तिष्क, इन्द्रियों तथा शरीर का सन्तुलन खो जाये।

आर्ष ग्रन्थों में भी मानव के लिए इस प्रकार की नशीली शराब आदि वस्तुओं का निषेध किया गया है।

वेद में कहा है कि—

हृत्सु पीतासु युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ (ऋ० ८-२-१२)

शराब पीकर शराबी लोग खूब लड़ते हैं और उनके शरीर की शक्ति शीघ्र क्षीण होने से वे शीघ्र ही बूढ़े होने लगते हैं। अतः ऐसी वस्तु का पान नहीं करना चाहिए।

मदिरा के सम्बन्ध में मनुस्मृति में कहा गया है कि—

"सुरा वै मलमन्ननां, पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यो वैश्यच न सुरां पिबेत॥ (मनु० ११-९३)

सुरा (शराब) अन्न का मल है। मल को पाप कहते हैं। मल-मूत्र जैसे अभक्ष्य पदार्थ हैं वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि सुरा (शराब) रूपी मल को न पीवें, क्योंकि मल-मूत्र तो शूकर आदि पशु ही खाते-पीते हैं, मनुष्य नहीं।

सुरा के भेद तथा उसके पीने का निषेध—

गौड़ पेष्टी च माध्वी च बिशेया त्रिविधा शुरा।
यथैवका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः॥ (मनु० ११-९९)

१—गौड़ी; २—पैष्ठी; ३—माध्वी क्रमशः गुड़, पिट्ठी और महुए के पुष्पों से बनी हुई तीन प्रकार की सुरा (मदिरा) होती है। जिस प्रकार की एक है उसी प्रकार की सभी हैं। इसीलिए द्विजोत्तमों अर्थात् श्रेष्ठ द्विजों—ब्राह्मण, क्षत्रियादि त्रैवर्णिकों को उसका पान नहीं करना चाहिए।

याज्ञवल्क्यस्मृति में भी लिखा है कि—

पतिलोकं न सा याति ब्राह्मणी या सुरा पिबेत्।
इहैव सा शुनी गृध्री शूकरी चोपजायते॥ (याज्ञ० ५-१५६)

जो ब्राह्मणी 'स्त्री' शराब पीवे वह पतिलोक को प्राप्त नहीं होती अर्थात् वह घर को नहीं बसा सकती, फिर भला वह अपने बाल-बच्चों को क्या शिक्षा दे सकती है? वह तो इस लोक में मल खाने वाली कुतिया, गिधनी तथा सूकरी हो जाती है। यही दशा शराब पीने वाले पति की भी होती है। मनुस्मृति में तो शराब को राक्षसों का पेय पदार्थ बताया गया है। अतः मनुष्यों को तो इसे छूना भी नहीं चाहिए—

यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुराआसवम्।
तद् ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नत हविः॥ (मनु० ११-९५)

मद्य, मांस आदि तो यज्ञ, राक्षस, पिशाच और नीच चाण्डालों के भोज्य एवं पेय पदार्थ हैं। अतएव ब्राह्मण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को उनका सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि उन देवताओं का भोजन तो हव्य पदार्थ हैं। अन्यत्र

भी मनुस्मृति में कहा गया है—"वर्जयेन्मधु मांसं च"। शराब पीना एवं मांस खाना सर्वथा वर्जित है।

वेद जैसे प्रभु-प्रदत्त ज्ञानस्रोत में देवताओं को व पूज्य मनुष्यों और सज्जनों को कुछ नाम दिये गए हैं जिनसे पता लगता है कि देवताओं के पेय पदार्थ एवं भोज्य पदार्थ क्या थे? देवों को वेद में "अमृता-न्धसः" कहा गया है। "अमृत-मेव अन्धः अन्नंयेषांते" अमृत अर्थात मानव को अमृत बनाने वाले अर्थात् लम्बी आयु बनाने वाले भोजन ही देवताओं के अन्न हैं।

सोमपा भी देवताओं का नाम है अर्थात् जो सोम वृद्धिवर्धक, शान्ति, उत्साह, स्वास्थ्यप्रद सोमरस फलों के रस या सोमावल्ल अथवा भक्तिरस का पान करने वाला हो। इसके अतिरिक्त देवताओं का नाम "आज्यपा" भी है। इन शब्दों से यह सिद्ध हो जाता है कि देवताओं के खाद्य पेय पदार्थ यव, गोधूम (गेहूँ) माष (उड़द) तिल आदि अन्न तथा पेय दुग्ध, घृत, फलों के रस आदि हैं। जबकि राक्षसों के कुछ नाम वेद में आते हैं, असुतृप्तः, सुरापः, क्रव्यादः, अण्डादः अर्थात् दूसरों के रक्त से, मांस, अण्डों से और सुरा आदि के पान करने से अपने को जो तृप्त करने वाले हैं। इन शब्दों से भी यह सिद्ध होता है कि मनुष्य को मनुष्य बनने के लिए यह आवश्यक है कि वह इन बुद्धि विनाशक राक्षसी अभक्ष्य खाद्यों तथा अपेय पदार्थों से पृथक रहे।

देश-विदेश के सभी लोग पूर्णरूप से इस बात से सहमत हैं कि प्राचीन काल में भारतवासी गौरव के उच्च शिखर पर पहुँचे हुए थे। उस समय की अर्थात् उपनिषद् काल की एक घटना का उल्लेख मिलता है :—

कुछ आध्यात्मिक महापुरुष, ऋषिगण अपने एक प्रश्न के समाधान के लिए समित्पाणी होकर राजा अश्वपति के पास गए। भोजन पूछने पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया। राजा ने यह अनुभव किया कि सम्भवतः राजकीय आय में पाप की आशंका होने पर इन्होंने मेरे भोजन को स्वीकार न किया हो। इस पर राजा अश्वपति ने गर्वपूर्ण परन्तु वास्तविकता का प्रकाश करते हुए कहा—

> **न मे स्तेनो जनपदे, न कदर्यो; न मद्यपो, नानाहिताग्निः।**
> **नाविद्वान् न स्वैरी, स्वैरिणी कुतः।** (छा० उप०)

अर्थात् मेरे देश में कोई चोर नहीं, कोई कन्जूस नहीं, कोई मद्य पीने वाला नहीं अर्थात् शराबी नहीं, अग्निहोत्र न करने वाला कोई नहीं, अविद्वान्-अनपढ़ कोई नहीं, व्यभिचारी कोई नहीं, व्यभिचारिणी तो हो ही कैसे सकती है? क्या आज भी क्वचित् किसी देश या प्रान्त, जनपद या ग्राम का अधिपति ऐसी घोषणा कर सकता है?

वैद्यक के प्रसिद्ध प्राचीन वैज्ञानिक ग्रन्थ सुश्रुत के टीकाकार श्री उल्हाणाचार्य का कथन है कि—

मांसकाया: सुराकामाः स्त्रीकामाः साहसे रता ।

मागधेयास्तेन भूयिष्ठं दृश्यन्ते राजयक्ष्मिणः ।।

मगध (बिहार) देशवासी मांसहारी, शराबी, व्यभिचारी तथा बलात्कार के कार्यों में लगे रहते हैं। अतः अधिकतर वे लोग राजयक्ष्मा से पीड़ित देखे जाते हैं।

भाव यह है कि मांस, शराव (व्यभिचार तो इन व्यसनों का सहज सहचारी है) का परिणाम राजयक्ष्मा है—तपेदिक है। पाश्चात्य प्रणाली के प्रवीण डाक्टर भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं।

धर्मशास्त्रों में सुरा पान करने पर जिन प्रायश्चित्तों का विधान है उनसे यह भी सिद्ध होता है कि पापों की जड़ इस मदिरा अर्थात् शराब से मानव को दूर रहना चाहिए।

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्: ।

तथा स कायेनिर्दग्घे मुच्चते किल्बिषाततः ।। (मनु० ११-९०)

द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य अज्ञानवश मदिरा पान करने पर अग्नि के समान गरम जलती हुई मदिरा पीने से शरीर के जलने पर वह उस पाप से छूट जाता है अथवा—

गोमूत्रमग्निवर्णां वा पिबेदुदकमेव वा ।

पयो घृत वामरणाद् गोशकृव रसमेव वात ।।

या

कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ।

सुरापानापनुत्यर्थं बालवासा जटी ध्वजी । (मनु० ११-९२)

गोमूत्र, जल, दुग्ध या गोमयरस को अग्नि सम उष्ण करके मरण पर्यन्त पीये या बाल से बने कम्बलादि को धारण करता हुआ जटाधारी सुरापान के चिह्न को धारण करता हुआ तथा एक वर्ष तक चावल की कुटी खल रात को एक समय खाता हुआ मदिरा पान के दोष से मुक्त हो सकता है। ऐसा केवल मनु जी ही कह रहे हों, ऐसी बात नहीं, कुछ शब्द भेद या कुछ दण्ड भेद से याज्ञवल्क्य स्मृति (५-२५३) में, अत्रि स्मृति में, बृहस्पति स्मृति तथा वशिष्ठ आदि धर्मशास्त्रों में भी इन प्रायश्चित्तों के विधान किये गये हैं जिनमें मदिरा पीने का तो विधान क्या करेंगे, उल्टा भूल से अज्ञानवश पी लेने पर जबकि इतने कठोर प्रायश्चित्त—दण्डों—का विधान किया गया है। अतः वेदादि सत्य

शास्त्रों के प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि मानव को इस विनाशक मद-कारी वस्तु से बचना चाहिए।

इसी के सम्बन्ध में नाना प्रकार के दुःख परिणाम को देखकर ही तो महर्षि दयानन्द जी ने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के दशम समुल्लास में मनु महाराज के निम्न वचन का उद्धरण देते हुए सुरापान एवं मांस के सेवन का निषेध किया है—

"वर्जयेत् मधुमांस च।" (मनु०)। अन्यत्र भी अपने रचित ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर महर्षि दयानन्द जी ने इसको दोषों, दुर्गुणों एवं दुर्व्यसनों की जड़ होने से मानव को इससे सदा दूर रहने का उपदेश दिया है—"वर्जयेत् मधुमांसं च।" (मनु०) का अर्थ करते हुए महर्षि जी लिखते हैं, जैसे अनेक प्रकार के मद्य, मांस, गांजा, भांग, अफीम आदि जो बुद्धिनाश करने वाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें।

इस प्रकार केवल धर्मशास्त्रों में ही इसका निषेध नहीं, बल्कि अन्य महा-पुरुषों ने भी इसका निषेध किया है। किसी भक्त का कहना है—

जिस पीते मति दूर होय बाल पवे बिच आय।
ऐसा मदमूल न पीवई जे बहुरि पछताय॥

जिसके पान से बुद्धि भ्रष्ट हो जाये और बकवास करने लग जाये ऐसी शराब कभी नहीं पीनी चाहिए। इस प्रकार इसके परित्याग में ही सर्व विध कल्याण है।

महात्मा गांधी जी २५-६-३१ के "यंग इण्डिया" में लिखते हैं—"अगर मुझे एक घण्टे के लिए भी सारे भारत का तानाशाह बना दिया जाये तो पहला काम मैं यह करूंगा कि तमाम शराबखानों को मुआवजा दिये बिना ही बन्द करा दूंगा।"

क्या शराबबन्दी में लोगों को कानून द्वारा जबरन सदाचारी बनाने की बात नहीं है? ऐसा प्रश्न गांधी जी से किये जाने पर उन्होंने उत्तर दिया—

"आप ऊपर से सत्य दिखाई देने वाले इस तर्क के धोखे में न आइये कि भारत को जबरन संयमी न बनाया जाए और जो शराब पीना चाहें उन्हें पीने की सुविधायें दी जायें। राज्य का कार्य लोगों की बुराइयों के लिए सहूलियत पैदा करना नहीं है। हम व्यभिचार के अड्डों का संचालन नहीं करते और न ही उनके परवाने हैं। हम चोरों को उनकी चोरी की वासना पूरी करने के लिए सुविधा नहीं देते। मैं शराबखोरी को चोरी और शायद व्यभिचार से भी अधिक निन्दनीय समझता हूं। क्या यह अक्सर दोनों की जननी नहीं होती?"

—यंग इण्डिया ८-६-२१

इतिहास साक्षी है कि मांस, मदिरा, जुआ तथा व्यभिचार से कितने ही राजवंशों की दुर्गति हुई है।

इसी शराब आदि से यदुवंशियों ने महाभारत के युद्ध के ३६ वें वर्ष के पश्चात् ऐसी दुर्गति को पाया कि ऋषि एवं महापुरुषों की सम्मतियों तक का भी तिरस्कार करते हुए माता-पिता, भाई-बन्धु का विवेक भी भूलकर परस्पर में ही लड़-झगड़कर कट मरे और उनकी स्त्रियों की लूटमार की गई।

इसके बाद बहुत आगे चलकर भी हिन्दू राजा-महाराजाओं का अधःपतन होता रहा और उनका ही क्या बहुत कुछ भारत के चरित्र का ठेकेदार पुरोहित एवं ब्राह्मण वर्ग भी पतित हो गया और धर्म के पवित्र स्थान भी धर्म की आड़ में मांस-मदिरा तथा व्यभिचार के अड्डे बन गये, जिसके परिणामस्वरूप मुहम्मद बिनकासिम, महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गौरी जैसों ने आक्रमण कर भारत की दुर्गति की और लूटमार में बहुत कुछ लेकर अपनी ओर से भारत को कंगाल कर गए। यहीं तक ही नहीं, मुगलों ने भी इस भारत को हड़पने की कोशिश की और वे इसमें पर्याप्त सफल होकर दीर्घकाल पर्यन्त इस पर शासन भी करते रहे, परन्तु शासनसत्ता में आकर मुगल खानदान सुरा तथा सुन्दरी के विलास में ऐसा फंसा कि उसको इसने खोखला करके रख दिया और मुगल खानदान भी अन्त में विलासिता तथा शराब की प्याली रूपी समुद्र में डूबकर प्रायः समाप्त हो गया।

इस शराब की प्याली में केवल यही राज्य डूबकर नष्ट हो गए हैं ऐसी बात नहीं। मुस्लिम राज्यों तथा मराठों का भी अन्त में अन्त इसी से हुआ।

इसके अतिरिक्त हम दैनिक जीवन में शराबियों की जो दुर्दशा देखते हैं उसको देखकर तो एक समझदार व्यक्ति को इसे छूना भी नहीं चाहिए। प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? जब कोई शराबी शराब पीता है, तो शराब अन्दर और अक्ल बाहर। उसकी बुद्धि और स्मृति अस्त-व्यस्त हो जाती है, मस्तिष्क कार्य करना छोड़ देता है। विचार-सामर्थ्य कुण्ठित हो जाती है। देह एवं इन्द्रियाँ काबू से बाहर हो जाती हैं और माता-बहिन का विवेक भी खोकर मानव कुछ का कुछ कर बैठते हैं। कहीं नालियों में, सड़कों पर अस्त-व्यस्त रूप में गिर पड़े शराबी देखने में आते हैं जिनके मुख में कुत्ते आदि भी मूत्र विसर्जन कर जाते हैं। अन्य सभी अकथनीय दुर्गतियाँ उनकी देखी-सुनी जाती रहती हैं।

जिन परिवारों के किसी एक भी सदस्य को यह लत लग जाती है, उनके घरों की दुर्दशा देखते नहीं बनती। धन का दुरुपयोग एवं बुरी तरह विनाश देखा जाता है, घर की सम्पत्ति बहुत शीघ्र ही खराब तथा इसके साथ माँस, व्यभिचार, जुआ आदि स्वाभाविक साथ में आने वाले कुकर्मों में विनष्ट हो जाती है। एक परिवार का मुख्य सदस्य ट्रेक्टर, जेवर आदि बेचकर जब बहुत कुछ

स्वाहा कर देता है तब वह नारी से और धन मांगता है। यदि वह नहीं देती तो बुरी तरह पीटता है। वह बेचारी सब कुछ देती रहती है परन्तु सीमा पार हो जाने पर फिर उसके न दे सकने पर बुरी तरह उसे मारता-पीटता है तब वह ग्राम के लोगों के पास जा-जा कर जार-जार रोती है कि इससे यह मर जाए तो अच्छा है, नहीं तो खेत आदि भी बेचकर घर को बर्बाद करने पर तुला हुआ है। मैं बच्चों को कैसे पालूंगी आदि-आदि। तब इस धर्म-कर्म, कुल-मर्यादाओं से भ्रष्ट वह शराबी अपने धन, स्वास्थ्य और घर को तथा अपने कुल के यश को मिट्टी में मिला देता है। अतः इस शराब जैसी वस्तु से सभी लोगों को बहुत दूर रहना चाहिए। नहीं तो भूल से भी इसका आरम्भ हो गया और इसकी लत हो गई तो बर्बाद और बदनाम करके ही यह जान छोड़ेगी।

इसके अतिरिक्त सभी धर्मों में मानव की अमूल्य सम्पत्ति बुद्धि को भ्रष्ट करने वाली तथा इन्द्रियों और शरीर को विकृति अथवा अस्त-व्यस्त करने वाली नशीली वस्तु शराब का निषेध किया गया है। शराब के विषय में ईसा का क्या रुख था? तौरेत में लिखा है—"शोकातुर कौन है? चिन्तित कौन है? घबराहट से भरा जीवन किसका है? अकारण चोटें किसे लगती हैं, आंखें लाल किसकी रहती हैं?"

"वे जो देर तक शराब पीते रहते हैं, वे जो नशीली शराब की खोज करते हैं।" इस प्रकार ईसाई धर्म में भी शराब का निषेध किया गया है।

इसके अतिरिक्त संसार के बुद्धिमान देश-विदेश के वैद्य, डाक्टर भी इस विनाशक मदकारी वस्तु से मानव को दूर रहने का परामर्श देते हैं क्योंकि आगे चलकर इससे बड़ी भयंकर बीमारियां पैदा होती हैं।

डाक्टर डसेट्री साहब लिखते हैं कि शराब से थकावट अनुभव करने की शक्ति मर जाती है, स्वास्थ्य का नाश होता है।

डाक्टर रिज कहते हैं कि शराब पीकर शराबी अपने देह-बल तथा मानस-बल को बहुत बढ़ा हुआ अनुभव करता है किन्तु परीक्षा करने पर उलटा ही परिणाम निकलता है अर्थात् शक्ति बहुत घट जाती है।

इस प्रकार अपना लाभ चाहने वाले मानव को इस विनाशक नशीली वस्तु से सदा दूर रहना चाहिए और भली सरकार को भी अर्थात् बापू की पुजारिन सरकार को भी धन के लोभ का परित्याग कर प्रजा के सुख-सौभाग्य के लिए इसे तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। आशा है कि विचारशील मनुष्य तथा विचारशील राज्याधिकारी इस पर गम्भीरता से विचार करेंगे।

आज शराब का रिवाज आधुनिकता के साथ-साथ बढ़ रहा है। समाज को जर्जर बनाने वाली इस जहर ज्वाला के विरुद्ध सभी सबल स्वर से लड़ें, यह समय की मांग है। ●

सत्यार्थप्रकाश शताब्दी के उपलक्ष्य में

अधिक से अधिक सत्यार्थप्रकाश मंगाइये

सत्यार्थप्रकाश का नया संस्करण तैयार है........

प्रचार संस्करण—तिरंगा आकर्षक आवरण
२३×३६=१६ साइज - २००) सैकड़ा

उपहार संस्करण—कपड़े की बढ़िया जिल्द,
बढ़िया कागज, ३२५) सैकड़ा

१०, २५, ५०, १००, २५०, ५००, १००० प्रतियों के आदेश ही
स्वीकार होंगे

धन आदेश के साथ ही भेजें : वी० पी० नहीं भेजेंगे

शीघ्रता कीजिए : तीसरे संस्करण की प्रतीक्षा न करनी पड़े।

व्यवस्थापक
जन-ज्ञान प्रकाशन
१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग, करौल बाग
नई दिल्ली-५

प्रचार के लिये नये प्रकाशन

१. सत्यार्थप्रकाश (उपहार संस्करण)

मूल्य ४) =३२५) सैकड़ा

कपड़े की जिल्द : दुरंगी स्क्रीन प्रिंटिंग

सत्यार्थ प्रकाश प्रचार संस्करण मूल्य २।।) =२००) सैकड़ा

२. निमन्त्रण : आर्यसमाज का

स्व. पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखित

मूल्य १५ पैसे । १०) सैकड़ा

३. सत्संग-महिमा

मूल्य २० पैसे । १) सैकड़ा

४. ईश्वर-भक्ति

स्व. स्वामी सर्वदानन्द जी का अध्यात्म संबंधी अनुपम ग्रन्थ

मूल्य ६० पैसे । ४०) सैकड़ा

५. वैदिक समाजवाद

पं. वीरसेन जी लिखित— मूल्य ८० पैसे । ६०) सैकड़ा

६. वैदिक अध्यात्म

मूल्य ६० पैसे । ४०) सैकड़ा

७. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

अनुपम—प्रेरक—जीवन गाथा

पं० दीनानाथ सिद्धांतालंकार लिखित—

मूल्य ८० पैसे । ५०) सैकड़ा

प्रचार के लिये अधिक से अधिक मँगाएँ

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५६७, हरध्यानसिंह रोड

नई दिल्ली-५

मुफ्त साहित्य प्रचारक मगाएं। मासिक पुस्तकालयों को केवल ६० पैसे डाक व्यय लेकर वर्ष भर भेजा जाएगा। विज्ञापन का उत्तम साधन है। नमूना मुफ्त मंगाएं।

पंडित जयदेव ब्रदर्स आत्माराम मार्ग कारेली बाग बड़ौदा

अपनी

आवश्यकताओं

वर-वधू

नौकरी आदि

की आवश्यकताओं

के लिये

जनज्ञान

में

विज्ञापन दीजिए

जन-ज्ञान के सदस्यों से

यदि आप वी० पी० मंगाने की आदत
छोड़ दें तो—

वर्ष में हजारों रुपये
बच सकते हैं

आप केवल इतना कीजिए कि
शुल्क-समाप्ति का पत्र मिलते ही
१०) मनीआर्डर से भेज दें।

या

यदि किसी कारण से भी सदस्य न रहना चाहें
तो
१० पैसे खर्च कर एक कार्ड द्वारा
अपने निर्णय से सूचित कर दें

यह आपका आगे बढ़ने में भारी सहयोग होगा

क्या आप ध्यान देंगे ?

—सम्पादक

प्रचार के लिए

आकर्षक वैदिक साहित्य

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का प्रकाशन

1.	Light of Truth : अंग्रेजी "सत्यार्थ-प्रकाश"	Rs. 12.00
2.	Life and Teachings of Swami Dayanand	Rs. 10.00
3.	Teachings of Swami Dayanand	Rs. 0.75
4.	Ten Commandments	Rs. 1.00
5.	Message of the Arya Samaj to the Universe	३० पैसे
6.	Vedic-Prayer	मूल्य २) ५०
7.	Dayanand the Great (दूसरा नया संस्करण)	मूल्य १५ पैसे
8.	An Introduction to the Arya Samaj (नया संस्करण)	१५ पैसे
9.	The Great Gaytri	मूल्य २० पैसे—१५) सैकड़ा
10.	The Vedic Fundamentals	Rs. 2.50
11.	Vedic-Life जीवन का वैदिक दर्शन	मूल्य २)५०
१२.	वैदिक सतसंग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण	मूल्य ६० पैसे
१३.	वैदिक-समाजवाद —आचार्य वीरसेन वेदश्रमी	मूल्य ८० पैसे
१४.	धर्मग्रन्थावलोकन	१.५०
१५.	गीत—मंजरी (नया संस्करण)	मूल्य १)
१६.	अमृत-पथ (सजिल्द) —दीनानाथ सिद्धान्तालंकार	३)
१७.	सत्यार्थ-प्रकाश हिन्दी —उपहार संस्करण	मूल्य ४)
१८.	प्रार्थना मंत्र व्याख्या —हरिशरण प्रचार संस्थान	मूल्य २५० पैसे
१९.	भारत की अवनति के ७ कारण ब्र० जगदीश एम० ए० की लोह लेखनी द्वारा लिखित । पृष्ठ ६८ ।	मूल्य ५० पैसे
२०.	वैदिक-अध्यात्म-ज्योति —स्वामी अनुभवानन्द जी	मूल्य २)
२१.	योग-जीवन	मूल्य २)
२२.	नीति-दोहावली प्रत्येक आवश्यक विषय पर उपयोगी दोहे-कविताएं और प्रमाण जीवन के संदर्भ में प्रेरक मार्ग दर्शन —आचार्य जगदीश विद्यार्थी द्वारा संग्रहीत।	मूल्य ८० पैसे
२३.	ज्ञान-ज्योति —४०० वेद मंत्रों का भाष्य	मूल्य ३)
२४.	वैदिक-सिद्धान्त पं यशःपाल 'सिद्धांतकार'	मूल्य २)
२५.	आर्यसमाज के नियम स्व० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या	८० पसे
२६.	लाल आंधी —कम्यूनिजम का विश्लेषण	८० पैसे

२७. सत्यार्थ-प्रकाश-प्रचार संस्करण मूल्य २)५०
२८. दहला पागल हो गया : ८० पैसे
२९. वैदिक भक्तिवाद मूल्य २० पैसे, १५) सैकड़ा
३०. वैदिक विचारधारा मूल्य ३० „ २०) सैकड़ा
३१. विश्व को आर्यसमाज का सन्देश १५) सैकड़ा
३२. सत्संग महिमा —स्वामी वेदानन्द तीर्थ २०) सैकड़ा
३३. स्वामी श्रद्धानन्द-जीवन चरित्र ५० पैसे
३४. उपनिषद्-त्रयी —पं० शिवदयालु जी ८० पैसे
*३५. ऋषि दयानन्द जीवन चरित्र २६० पृष्ठ मूल्य १००) सैकड़ा
३६. वैदिक संध्या—अर्थ सहित १०)सैकड़ा
३७. ईश्वर-भक्ति —स्वामी सर्वदानन्द जी ६० पैसे
३८. वैदिक अध्यात्म —पं० वीरसेन जी ८० पैसे
३९. उपनिषद्-वचनामृत —पं० दीनानाथ जी ५० पैसे
४०. मर्यादापुरुषोत्तम राम — „ „ ८० पैसे

१०) सैकड़ा के उपयोगी प्रचार ट्रैक्ट

४१. आर्यसमाज क्या मानता है ? —मदनमोहन विद्यासागर
४२. विश्व को वेद का संदेश —भारतेन्द्र नाथ
४३. महर्षि दयानन्द की विशेषताएं —महात्मा नारायण स्वामी
४४. आर्यसमाज की विचारधारा —गंगाप्रसाद उपाध्याय
४५. आर्य समाज की मान्यताएं —प० रामचन्द्र देहलवी
४६. निमंत्रण:आर्य समाज का —गंगा प्रसाद उपाध्याय
४७. आर्य समाज के दस नियम —रघुनाथ प्रसाद पाठक
४८. ईसाई पादरी उत्तर दें। —स्वामी श्रद्धानन्द
४९. A Challenge to the Christian Faith ३) सैकड़ा
५०. Bible in the Balance —चार्ल्स स्मिथ १५ सैकड़ा
५१. ज्ञान विज्ञान का शत्रु ईसाई मत —ओम प्रकाश त्यागी १०) सैकड़ा
५२. पोप की सेना का भारत पर हमला —भारतेन्द्र नाथ १०) सैकड़ा
५३. ईसाइयों की प्रचार प्रणाली —जगत्कुमार शास्त्री १०) सैकड़ा
५४. पादरियों को चुनौती —स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती १०) सैकड़ा
५५. बाइबल को चुनौती —ओमप्रकाश त्यागी १५) सैकड़ा
५६. ईसाइयत की वास्तविकता —शांतिप्रकाश महोपदेशक १०) सैकड़ा
५७. बाइबल कसौटी पर —चार्ल्स स्मिथ १५) सैकड़ा
५८. मूर्तिपूजा की हानियां १०) सैकड़ा

जन-ज्ञान-प्रकाशन

१५९७, हरध्यान सिंह मार्ग, करौल बाग नई दिल्ली-५

महर्षि दयानन्द के दिव्य स्वप्नों की पूर्ति के लिए
धरती पर वैदिक विचारधारा का साम्राज्य
स्थापित करने के लिये

=००=

गीता प्रेस जैसा शक्तिशाली वैदिक
साहित्य प्रकाशन संस्थान बनाने के लिए
अधिक से अधिक सहयोग देकर

"दयानन्द-संस्थान" के सदस्य बनिये

१००१)	प्रति वर्ष	देकर	"संरक्षक-सदस्य"
५०१)	"	"	"पोषक-सदस्य"
२५१)	"	"	"प्रेरक-सदस्य"
१०१)	"	"	"संचालक-सदस्य"
५१)	"	"	"दाता-सदस्य"
२५)	"	"	"सहायक-सदस्य"
११)	"	"	"प्रचारक-सदस्य"

आप का सहयोग ही हमारी शक्ति है।

विनीत—

अध्यक्ष

दयानन्द संस्थान,

नई दिल्ली-५

दूरभाष : ५६६६३६

वीरता के स्रोत : महाराणा प्रताप

आत्म पावन यज्ञ

राजधानी में १ से ७ मई तक श्री राजेन्द्र मलिक के गृह पर आत्मपावन यज्ञ समारोह ब्र० जगदीश विद्यार्थी के आचार्यत्व में संपन्न हुआ। श्री पं० महेन्द्र कुमार जी शास्त्री व पं० आर्य रत्न जी आदि पंडित भी मंत्र पढ़ने में सहयोग देते रहे।

यज्ञ की पूर्णाहुति ७ मई को प्रातः ६ बजे सम्पन्न हुयी। इस अवसर पर श्री पं० भारतेन्द्र नाथ साहित्यालंकार, पं० प्रकाशवीर शास्त्री, केन्द्रीय मंत्रिमंडल के सदस्य प्रो० शेरसिंह, व श्री चौ० मोइनुल हक व अनेक गण्य-मान्य व्यक्ति व जन ज्ञान की संपादक पंडित राकेश रानी उपस्थित थे।

आत्म पावन यज्ञ के ब्रह्मा ब्र० जगदीश विद्यार्थी : पं० महेन्द्रकुमार शास्त्री—पं० भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार और भारत सरकार के राज्य मंत्री प्रो० शेरसिंह—यज्ञ के यजमान श्री राजेन्द्रसिंह मलिक और उनकी धर्मपरायणपत्नी श्रीमती कौशल्या देवी जी।

यज्ञ वेदी पर खड़े हैं—दयानन्द संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्रनाथ केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के वरिष्ठ सदस्य-चौ० मोइनुल हक—यज्ञ के यजमान श्री राजेन्द्रसिंह जी मलिक व उन की धर्मपत्नी श्रीमती कौशल्या देवी जी।

सातों दिन यज्ञ पर विभिन्न विद्वानों के प्रभावशाली प्रवचन होते रहे। जनता पर यज्ञ का स्थायी प्रभाव रहा।

पूर्णाहुति के दिन पं० भारतेन्द्रनाथ का प्रवचन मंत्रमुग्धकारी था। उन के द्वारा आर्य समाज की मान्यताओं और सिद्धान्तों का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया उसे सुनकर भारत सरकार के मंत्रिमंडल के वरिष्ठ सदस्य चौ० मोइनुलहक अत्यन्त प्रभावित हुए।

श्री हक ने २० मिनट तक पंडित जी द्वारा दिए गए उपदेश की एक-एक बात को उद्धृत कर सराहना की। उनके शब्द थे कि मैं पंडित जी के भाषण से अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ और धर्म का जो रूप इन्होंने बताया है वही मनुष्य मात्र को मानना चाहिए।

चौ० मोइनुल हक द्वारा आर्य समाज के मंतव्यों से प्रभावित हो दिया गया भाषण सुन कर सभी उपस्थित नर नारियों का यह मत था कि यदि आर्यसमाज की वेदी से वैदिक सिद्धान्तों पर ही प्रभावशाली भाषण कराए जाएं तो देश का नक्शा ही बदल जाए।

यज्ञ की यह अपूर्व सफलता थी कि आर्य समाज के महान् सिद्धान्तों की छाप राष्ट्र के उच्च स्तरीय बुद्धिजीवी वर्ग के मानस पटल पर स्थायी रूप से अंकित हो गयी।

सभी उपस्थित नर-नारियों ने यज्ञ के यजमान श्री राजेन्द्र जी मलिक को गृहस्थ जीवन २५ वर्ष सफलता पूर्वक बीतने पर बधायी दी। समारोह सब भांति सफल रहा। ★

छपते-छपते—

श्री गोपालदास जी का देहान्त

श्री भगवान देव शर्मा उपमंत्री सार्वदेशिक सभा के पूज्य पिता श्री गोपालदास जी का २९ मई को ब्यावर में देहान्त हो गया। परमात्मा दिवंगत को शाँति और और परिवार को धैर्य प्रदान करे

—संपादक

जन-ज्ञान प्रकाशन का ७९ वां पुष्प

॥ ओ३म् ॥

वैदिक--अध्यात्म

—लेखक—

श्री पं० वीरसेन वेदश्रमी

—प्रकाशक—

ज न - ज्ञा न - प्र का श न

नई दिल्ली-५

प्रकाशक—
जन-ज्ञान-प्रकाशन
१५९७ हरध्यानसिंह मार्ग
नई दिल्ली—५

दूरभाष-५६६६३९

संपादक—
राकेश रानी

मूल्य ७५ पैसे

मुद्रक :
सैनी प्रिण्टर्स
देहली-६

ज्येष्ठ
संवत् २०२९

संसार में वेद का सन्देश फैलाने और वैदिक साहित्य प्रकाशन के लिए

१. जन-ज्ञान (मासिक) के सदस्य बनें

वार्षिक मूल्य १०)   आजीवन २०१)

नमूना पत्र लिखकर बिना मूल्य मंगाएँ

२. वैदिक साहित्य व अंग्रेजी के ग्रन्थ प्रकाशन हेतु व ईसाइयत के प्रवाह को रोकने के लिये उदारतापूर्वक सहयोग दीजिये । —भारतेन्द्रनाथ

"दयानन्द-संस्थान" को शक्तिशाली बनाएं

अध्यक्ष—
दयानन्द-संस्थान
१५९७, हरध्यान सिंह मार्ग, करौल बाग,
नई दिल्ली-५

अपनी ओर से……

अंधेरे में प्रकाश के लिए जैसे दीपक की आवश्यकता होती है वैसे ही मन मंदिर का अंधकार मिटाने के लिए प्रभु के प्रकाश की।

प्रभु का प्रकाश शरीर ग्रहण नहीं कर सकता, न वह इन्द्रियों से देखा जा सकता है। उसे तो 'आत्मा' ही देख सकता है।

'आत्मा' जो अधिष्ठाता है शरीर का, जो प्राण है वह निरावरण हो जब अपने स्वरूप को अनुभव करने की स्थिति में होता है तब परमात्मा का प्रकाश उसे ज्योति से भर देता है।

अध्यात्म नाम है उस मार्ग का, जिसमें आत्मा और परमात्मा के मध्य के सभी आवरण समाप्त हो जाते हैं। प्रभु से मिलने का एक मात्र मार्ग है अपने को जानना।

आत्म-ज्ञान से मनुष्य अपनी उस शक्ति को प्राप्त कर लेता है जिस से इस देह में रहते हुए भी वह परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त कर सके।

घने कुहरे और बादलों से सत्य ढक जाता है। अमृत विष और विष अमृत प्रतीत होने लगता है। सुख-दुःख में भेद समझ नहीं आता, इसी को अज्ञान कहते हैं।

धर्म भी वही है जो मनुष्य को प्रभु से मिलाए और ज्ञान का भी यही लक्ष्य है। यह सत्य मार्ग से भटका मनुष्य आज प्रकृति की उपासना में लीन आत्म हनन कर मनुष्य मार्ग छोड़ पशु बन रहा है।

"दयानन्द-संस्थान" इस पशुता और अज्ञान की समाप्ति के लिए कृत संकल्प हो प्रभु मिलन का मार्ग प्रशस्त कर धरती को स्वर्ग बनाना चाह रहा है।

इसी लक्ष्य पूर्ति हित यह लघु पुस्तक गागर में सागर भर हम भेंट कर रहे हैं। प्रभु कृपा करें कि मनुष्य के मन का तम-अज्ञान हटाने में हम सफल हों—

आशीर्वाद और शुभ कामनाओं सहित—

दयानन्द-संस्थान
नई दिल्ली-५
१.५.७२

—भारतेन्द्र नाथ
अध्यक्ष

भगवन् ! भले बुरे हम तेरे

भगवन् ! भले-बुरे हम तेरे ।
द्वार तुम्हारे आये मांगते, बन्धन काटो मेरे ।
भगवन् ! भले-बुरे हम तेरे ।।

तू स्वामी है जगती तल का, हम सेवक अज्ञानी ।
तू है अजर अमर अविनाशी, हम मूढ़मति अभिमानी ।।
भूल तुझे सब-भटक रहे हैं, शान्ति दान अब दे रे ।
भगवन् ! भले-बुरे हम तेरे ।

कोटि-कोटि पापों से पूरित, मेरी जीवन गाथा ।
अन्धकार में भटक रही है, जीवन तन्त्री त्राता ।।
ज्योति दिखा हे नाथ उबारो, मांग रहे नित टेरे ।
भगवन् ! भले-बुरे हम तेरे ।।

ज्ञान दीप को भूल बावरे, माया पीछे धाये ।
सत्य वस्तु को छोड़ भला क्या छाया कोई पाये ।।
राह दिखा हे दीन दयालु, द्वार पड़े हैं तेरे ।
भगवन् ! भले-बुरे हम तेरे ।।

आज हमारी नौका डगमग, डोल रही है स्वामी ।
जगत् भंवर में गोते खाता, व्यथित हुआ है प्राणी ।।
एक तुम्हारी आशा अब है, हमको सांझ-सबेरे ।
भगवन् ! भले-बुरे हम तेरे ।।

जीवन सफल बनाओ भगवन् ! दो आशीश हमें तुम ।
तुझमें खो दें अपनेपन को, और कहें केवल तुम ।।
जगत् उद्धारक परमपिता हो, एक सत्य ओ ! मेरे ।
भगवन् ! भले-बुरे हम तेरे ।।

—राकेश रानी

तू कौन है ?

अपने को पहचानो

ओ३म् कोऽसि, कतमोऽसि, कस्यासि, कोनामाऽसि

(यजुर्वेद अ० ७ । मं० २६)

तू कौन हैं, मैं कौन हूँ ? तू कौन-सा है, मैं कौन-सा हूँ ? तू किसका है, मैं किसका हूँ ? तू क्या नाम या शक्ति वाला है, मैं क्या सामर्थ्य वाला हूँ ? यही अध्यात्मविषयक विवेचन वेद ने महान् प्रश्नों के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित कर दिया है। इन प्रश्नों को निरन्तर अपने में जागृत करते हुए, इनका समुचित समाधान या उत्तर प्राप्त करना ही अध्यात्म विद्या है।

परमात्मा को भी पहचानो

अध्यात्म विद्या सम्बन्धी इन्हीं प्रश्नों से अपनी खोज, अपने अन्दर की शक्तियों की खोज और आत्मा की खोज भी प्रारम्भ होती है। आत्मा की खोज करने पर उसके सामने फिर प्रश्न होने लगता है :—

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः ।
कोऽहमस्मिन्नसिश्रितः ॥

(ऋग्वेद मं० १ । सू० ७५ । मं० ३)

आत्मान्वेषक विद्वन् ! मनुष्यों के बीच आपका कौन निश्चय करके जानने वाला है ? कौन दान देने और रक्षा करने वाला है ? तू कौन है और किसके आश्रित है ? इन प्रश्नों पर विचार करें।

अर्थात् मनुष्य अपने को ही सब कुछ न समझ बैठे। इसका जानने वाला कोई और भी है जिसको जानें बिना मनुष्य में अपूर्णता रह जायेगी। इस मनुष्य को सब ऐश्वर्य और ज्ञान का दाता कोई और है। जो यह सब हमें देने वाला है, वास्तव में हम उसके सामने याचक हैं। वह हमारी रक्षा करने वाला एवं पालन करने वाला है। हम सब उसी के आश्रित हैं। उस महान् आश्रयदाता को, महान् ज्ञानी को जब तक नहीं जानोगे तब तक सब ज्ञान-विज्ञान अधूरा ही रहेगा। जब तक उस महान् प्रभु को नहीं जानोगे प्रश्नों की बौछारें सदा पड़ती ही रहेंगी। जब उसको जान लोगे तब सब प्रश्न समाप्त हो जायेंगे। अतः वेद ने इन प्रश्नों द्वारा मनुष्य को अपने को एवं परमात्मा को भी जानने की प्रेरणा दी है।

अध्यात्म पक्ष

अध्यात्म विद्या वेद का प्रमुख अंग है। अध्यातम में आत्मा और परमात्मा का विवेचन, आत्मा जिस अंतःकरण चतुष्टय मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के आधार पर कार्य करता है तथा मन बुद्धि आदि जिन इन्द्रियों के आश्रित व्यापार करते है एवं इन्द्रियां जिस शरीर के आश्रित होकर व्यापार करती हैं सब अध्यात्म के अन्तर्गत हैं तथा शरीर अपने समस्त अधिष्ठानों से जिस क्षेत्र में व्यापार करता है वह उस अध्यात्म पक्ष का आधिदैवत क्षेत्र है।

आधिदैवत पक्ष

सृष्टि निर्माण में, सृष्टि की स्थिति एवं प्रलय में परमात्मतत्त्व की जो विविध शक्तियां क्रियाशील होती हैं और उनका प्रकृति के माध्यम या साहचर्य से जो अव्यक्त, सूक्ष्म एवं स्थूलरूप प्रकट होता है उसमें परमात्मा की विविध सामर्थ्य का प्रकारांतर से अनेक रूपों में दर्शन होता है। उनकी अपनी एक विशेष स्थिति दिव्यता के कारण गुणवैशिष्ट्य से होती है। गुण वैशिष्ट्य या अपनी-अपनी दिव्यता से विविधरूप में प्रतीयमान पदार्थ ही वेद की परिभाषा में देवतावाची होते हैं। अतः समस्त ब्रह्माण्ड दैवतमय है इसलिये ब्रह्माण्ड

को परमात्मा के साथ दैवात्मक स्थिति को आधिदैवत कहा जाता है।

अध्यात्म और आधिदैवत का सम्बन्ध

इस अध्यात्म क्षेत्र का और आधिदैवत क्षेत्र का परस्पर सहयोग है। आधिदैविक तत्त्व अध्यात्म के लिए उपभोग्य रूप में है और अध्यात्म क्षेत्र उपभोक्ता है, तथापि आधिदैविक तत्त्व अध्यात्म में उपभोक्ता रूप में भी अधिष्ठित हो जाते हैं। इसी स्थिति को पिंड और ब्रह्माण्ड नाम से कहा जाता है।

ब्रह्माण्ड और पिंड परस्पर ग्रथित हैं। विशाल ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियों से यह पिण्ड निर्मित होता है। कारण का गुणकार्य में आना स्वाभाविक है, अतः इस पिण्ड के यथार्थ ज्ञान से ब्रह्माण्ड का ज्ञान सुगम हो जाता है। इसलिए समस्त ब्रह्माण्ड के ज्ञान की कुंजी या नाभि यह मानव शरीर है।

पिण्ड और ब्रह्माण्ड का साम्य

पिण्ड और ब्रह्माण्ड के इस उभयपक्ष की रचना में साम्य का प्रदर्शक एक मंत्र वेद में निम्न प्रकार आता है।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिःसप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम्॥

(यजुर्वेद अ० ३१। मं० १५)

ब्रह्माण्ड पक्ष में इस ब्रह्माण्ड के चारों ओर सात परिधियां हैं। सप्त लोक ही सप्त परिधियां हैं। इन सात परिधियों से ब्रह्माण्ड की प्रत्येक रचना अपने केन्द्र एवं नियमित व्यवहार में स्थित है। इन परिधियों से ब्रह्माण्ड आवृत्त है। इन सप्तलोकों की परिधियों के अन्दर सप्त प्राण, सप्त ऋषि और सप्त आपः की इक्कीस समिधायें प्रदीप्त होकर इस विश्व का संचालन कर रही हैं।

अध्यात्म पक्ष में इस देह की सात परिधियाँ सप्त त्वचाओं की हैं, जिनके नाम ऊपर से अन्दर तक क्रमशः निम्न हैं
(१) अवभासिनी (२) लोहिता (३) श्वेता (४) ताम्रा, (५) वेदिनी (६) रोहिणी (७) मांसधरा।

इन्हीं सात त्वचाओं से इस शरीर के सब अवयव आवृत्त हैं।

भेद के आधार पर ही महर्षि सुश्रुत ने 'सप्तत्वचो भवन्ति' का अपने शिष्यों को प्रत्यक्ष कराया और उनके कार्यों को यथावत् जान-कर उनको उपरोक्त नामों से सम्बोधित किया।

इस आवरण या इन परिधियों के अन्दर शरीर के संगठन एवं कार्य संचालन के लिए तीन-तीन के समूह में सात-सात समिधायें हैं। जिस प्रकार समिधाओं से यज्ञाग्नि का रूप प्रकट होता है, उसी प्रकार शरीर रूपी यज्ञ निम्न इक्कीस समिधाओं से समिद्ध हो रहा है।

सप्त धातु (१) रस (२) रक्त (३) माँस (४) मेदा (५) अस्थि (६) मज्जा एवं (७) शुक्र।

(२) सप्त कला (१) माँसधरा (२) रक्तधरा (३) मेदोधरा (४) श्लेष्मधरा (५) पुरीषधरा (६) पित्तधरा एवं (७) शुक्रधरा।

(३) सप्त आशय (१) आमाशय (२) पित्ताशय (३) पक्वाशय (४) मूत्राशय (५) रक्ताशय (६) वाताशय (७) कफाशय।

इन समिधाओं द्वारा इस शरीर में जाननें योग्य पुरुष को इन्द्रि-यादि देवों ने कार्यक्षम बना रखा है। इसके अतिरिक्त पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, एक मन तथा दस प्राणरूपी इन कुल इक्कीस समि-धाओं से भी शरीर का कार्य संचालित होता रहता है।

अध्यात्म से आधिदैविक रचना

एक अन्य मंत्र में पिण्ड और ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध को और भी दृढ़ रूप से निम्न प्रकार प्रकट किया गया है :

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥

(यजुः अ० ३१। मं० १२)

अर्थात् मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति, चक्षु-दर्शन सामर्थ्य से सूर्य की उत्पत्ति, श्रोत्रसामर्थ्य से वायु और आकाश प्रदेश से जीवन निर्मित्त १० प्राण और मुख सामर्थ्य से अग्नि उत्पन्न हुई।

इस प्रकार आधिदैविक रूप से अग्नि मुख में वाक् होकर, सूर्य

चक्षु रूप से नेत्रों में, वायु और आकाश त्वचा एवं कान में, जल रेत रूप होकर शिश्न में, चन्द्रमा मन होकर हृदय में, पृथिवी गन्ध होकर नासिका में प्रविष्ट हो गई तथा

नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णोद्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रातथा लोकां २ ॥ अकल्पयन् ॥

(यजुः अ० ३१ । मं० १३)

अर्थात् नाभि से अन्तरिक्ष लोक स्थित हुआ, शिर से द्युलोक प्रतिष्ठित हुआ, पैरों से भूलोक प्रतिष्ठित हुआ और श्रोतों से दिशा तथा अन्य लोक प्रतिष्ठित हुए।

अध्यात्म में आधिदैवत का प्रवेश

स्थिति को निम्न वेद मन्त्र में बताया गया है :—

ओते मे द्यावापृथिवी ओतां देवी सरस्वती।
ओतौ म इन्द्राग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति ॥

(अथर्व कां ५ । सू० २३ । मं० १)

अर्थात् जब तक इस शरीर में कृमि-सूक्ष्माणुओं-सेलों के पाचन या विरोधी शक्तियों को नष्ट करने की सामर्थ्य द्वारा जीवन है तो इस शरीर में द्युलोक, पृथिवीलोक, वाणी, क्रियाशील प्राण तथा अग्नि आदि तत्त्व और आत्मा भी ओतप्रोत रहता है।

इसी को वेद में निम्न प्रकार भी कहा है :—

"अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम्"

(यजुः अ० ७ । मं० ५)

तेरे अन्दर द्युलोक और पृथिवीलोक स्थापित करता हूं। तेरे अन्दर महान् अन्तरिक्ष को भी स्थापित करता हूँ। इन मन्त्रों से ज्ञात होता है कि वेद में हमें यह बताया है कि इस देह में, इस पिण्ड में सब ब्रह्माण्ड की शक्तियाँ प्रतिनिधिवत् भी कार्य कर रही हैं।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि परमात्मा की प्रेरणा द्वारा सूर्य ने अपनी दर्शन शक्ति, चन्द्रमा ने अपनी मनन शक्ति, दिशाओं ने श्रोत्र शक्ति, वायु ने स्पर्श शक्ति, पृथिवी ने घ्राण शक्ति, जल ने रसना शक्ति, अग्नि ने रूप शक्ति से सम्पन्न करके इस देह की रचना की

है तथा ये सब तत्त्व स्वयं भी इसमें प्रतिष्ठित होकर इस मानव देह की सुन्दर, अद्भुत और पूर्ण रचना की महत्ता प्रकट कर रहे हैं।

मानव देह से परब्रह्म की साधना

संसार के रहस्यों को जानने की इस शरीर में अद्भुत सामर्थ्य है। यदि इस शरीर के स्वामी को ही जान लिया तो उसे विश्व का सब ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसीलिए वेद कहते हैं :

"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्"

(यजुः अ० ३१, मं० २)

यह सब कुछ जो दीख रहा है, जो कुछ देखा था और जो कुछ देखा जायेगा, तीनों कालों की स्थिति में वह पुरुष ही पुरुष है। अर्थात् पिण्डस्थ पुरुष का तथा ब्रह्माण्डरूपी विराट् शरीर में निवास करने वाले परमपुरुष का ज्ञान ही सब ज्ञानों की पराकाष्ठा है। इस निमित्त यदि इस देह को साधन बनाकर इसमें उसके दर्शन या ज्ञान को प्राप्त कर लिया, तो ब्रह्माण्ड में स्थित परमपुरुष का भी ज्ञान एवं उसकी प्राप्ति हो जायेगी।

मानव देह में देवों का प्रवेश

रेतः आज्यं कृत्वा देवाः पुरुषमाविशन्।

(अथर्व कां० ११। सूक्त २। मं० २६)

इस शरीररूपी यज्ञशाला में विश्व की देवमण्डली ने वीर्य को—उत्पत्ति के उपादान तत्त्व—को तेजस एवं हव्य बनाकर उसमें प्रवेश किया हुआ है। रेतस् के माध्यम से सब देवों का प्रवेश बताता है कि उत्पत्ति के मूल तत्त्व में ही देवताओं का भी बीज रूप से निवास है। अतः पुरुष में सब देव रहते हैं, यह ज्ञात हो जाता है।

उस रेतस् के ऊर्ध्वगमनशील भाग से सोम का निर्माण होता रहता है। सोम ही ओज है। उस सोम से देवों की पुष्टि होती रहती है। यदि रेतस् का सोम या ओज नहीं बनेगा तो शरीरस्थ इन्द्रियां सशक्त नहीं होंगी और असुर भाग की तृप्ति होती रहेगी। अतः शरीर को देवस्थली बनाने के लिए रेतस् को आज्य बनाना होगा।

इस स्थिति को वेद निम्न शब्दों में प्रकट कर रहा है :—

अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवा
सलिलान्यास न्।।

(अथर्व कां० १० । ८ । ४०)

अर्थात् जलों में प्राण वायु ने प्रवेश किया है और जल के सूक्ष्म भाग में देवों ने भी प्रवेश किया हुआ है। यही जलतत्त्व-आपौरेतो-भूत्त्वा-उत्पत्ति करता है। अतः इस देह में देवों का वास रहता है।

देवों की अयोध्यापुरी

शरीर में देवों की इस स्थिति को अन्य रूप से वेद निम्न शब्दों में कह रहा है :—

सर्वा ह्यस्मिन्देवा गावो गोष्ठ इवासते।

(अथर्व० कां० ११। सू०·२। मं० ३२)

अर्थात् इस मानव देह में सब देव इस प्रकार स्थित हैं, जैसे गायें अपने गोष्ठ-बाड़े में बन्द रहती हैं। अतः इस दिव्य देह में देवत्व को जागृत करना आवश्यक है। इस निमित्त शरीर की अद्भुत एवं दैवी रचना का जितना अधिक ज्ञान प्राप्त होगा, उतना ही अधिक इसकी ओर रुचि बढ़ेगी। वेद ने इस शरीर की अद्भुत रचना के बारे में कहा है :—

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्मिन्हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।।

(अथर्व० कां० १०। सूक्त ६। मं० ३१)

यह शरीर आठ चक्रों से युक्त है। इसके नौ द्वार हैं। देवताओं के निवास से यह अयोध्यापुरी बनी हुई है। इसमें अत्यन्त तेजस्वी, स्वर्णमय कोष है जो महान् ज्योति से—परमात्मा से—आवृत है और ज्योति की किरणें उसमें से प्रकट हो रही हैं।

अयोध्या के नवद्वार

नवद्वार इस देह के अन्दर स्थित हैं। इन नवद्वारों में सप्त द्वारों पर सप्त ऋषि बैठे हैं, जिनसे संसार के वाह्य रूप का दर्शन एवं अनुभूति का प्रवेश इस देह में होता है। परन्तु बाह्य अनुभूति का

अन्दर में प्रवेश ऋषियों के अनुरूप होगा। जिस घटना को वे जैसा महत्त्व एवं रूप देकर भीतर प्रवेश देंगे, वैसी भावना एवं विचार हमारे मन में जागृत होंगे। ये सब द्वार हमारे शरीर के श्रेष्ठ शिरोभाग में हैं। २ नेत्र के द्वार, २ नासिका के द्वार, २ श्रोत्र के द्वार और एक मुख का द्वार है। इन सप्त द्वारों के अतिरिक्त दो द्वार और भी हैं। वे गुप्त द्वार हैं।

वेद ने इस शरीर में ८ चक्रों की स्थिति बतायी है। इन चक्रों का सम्बन्ध सुषुम्ना नाड़ी से है। सुषुम्ना का अधोमुख भाग भौतिक प्राण शक्ति के चक्रों में क्रमशः भेदन के लिये प्रवेश का द्वार है और मस्तिष्क में कपालों की मध्यसन्धि भाग में सुषुम्ना का दूसरा द्वार ब्रह्मरन्ध्र में है। ब्रह्मरन्ध्र में से दिव्य, प्रकाशमय, ज्ञानमय प्राण का शरीर में प्रवेश होता है जो सविता से इस लोक पर अवतरित होता है। वहाँ सहस्रार चक्र है। योगी जन इसी मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र से प्राणों का विसर्जन करके सूर्य मण्डल को भेदकर परम धाम को प्राप्त करते हैं। इन दोनों द्वारों के ज्ञान से ही सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश करने से अष्ट चक्रों का दर्शन एवं ज्ञान हो पाता है।

द्वारों पर सप्तर्षि

देह के इन स्थूल द्वारों पर सप्त ऋषि, दक्षिण एवं वाम कर्ण में गौतम एवं भारद्वाज, दक्षिण एवं वाम नेत्र में विश्वामित्र और जमदग्नि, दक्षिण और वाम नासिका में वसिष्ठ एवं कश्यप और वाक् में अत्रि ऋषि विराजमान हैं। इन ऋषियों के इन द्वारों पर प्रहरी बने रहने से केवल वे ही विषय प्रवेश कर सकेंगे जिनको, ये अयोध्या में प्रवेश योग्य समझेंगे। इस प्रकार अयोध्या की सुरक्षा होने पर अयोध्या वासी प्राण, वृत्ति, मन, विचार आदि अष्ट चक्रों में विराज कर ब्रह्माण्ड के सप्त लोकों का दर्शन करके अष्टम चक्र से दिव्य, चैतन्य और सत्त्व स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं।

सप्त ऋषियों से इस देह की दिव्य स्थिति होने से यह अयोध्या नगरी बन जाती है। अयोध्या का तात्पर्य है, जिसको कोई पराजित न कर सके। अपराजित पुरी ही अयोध्या है।

सृष्टि की रचना चक्रमय है

संसार के चक्र हमें जन्म-मरण के चक्र पर आरूढ़ कर देते हैं। इन चक्रों से निवृत्त होने के लिये ही अष्ट चक्रों को परमात्मा ने इस देह में बनाया है। संसार की रचना चक्रमय है और संसार की प्रत्येक गति भी चक्रमय है। सृष्टि की सम्पूर्ण रचना चक्रवत् है एवं इसकी समस्त क्रिया भी चक्रवत् गतिमय है।

चक्र छन्दमय हैं

चक्रमय रचना एवं चक्रमय गति अपने-अपने छन्दों से सम्बन्धित है। अतः सृष्टि की सम्पूर्ण रचना एवं गति भी छन्दमय है। जब ब्रह्माण्ड ही छन्दमय है तो पिण्ड अर्थात् मानव देह की रचना भी छन्दमय होनी चाहिये। सृष्टि के अन्दर सप्त छन्द भी हैं, अष्ट छन्द भी तथा इससे भी अधिक हैं। छन्दों का अपना-अपना प्रकार है। प्रकारान्तरों से इनके भेदों की गणना भिन्न-भिन्न हो जाती है। अतः शरीर में भी सप्त एवं अष्ट छन्दमय रचना एवं गति भी सप्त चक्रों एवं अष्ट चक्रों के रूप में विद्यमान है।

अष्ट चक्रों का भेदन

वेद ने छन्दमय इन अष्ट चक्रों के भेदन का निम्न मन्त्र में उपदेश किया है—

गायत्री त्रिष्टुप् जगत्यनुष्टुप् पंक्त्या सह।
बृहत्युष्णिहा ककुम् सूचीभिः शम्यन्तु त्वा॥

(यजु० अ० २३। मं० ३३)

गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती, उष्णिक् ये सात छन्द एवं आठवें ककुम् छन्द रूप से जो शरीर में अष्ट चक्र हैं, वे सूची क्रम से भेदन किये जाने से तुझे दिव्य शान्ति प्रदान करें। प्राण की सूची एवं ध्यान के धागे से इन चक्रों का भेदन एवं परस्पर सम्पर्क ज्ञात होता है। इस प्रकार चक्रमय इन छन्दों के भेदन से दिव्य शान्ति का सन्देश वेद ने दिया।

चक्रों का स्वरूप

इन चक्रों के स्वरूप का भी वर्णन करते हुए चक्र भेदन का निम्न मन्त्र में संकेत है—

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥

(यजु० अ० २३ । मं० ३४)

पूर्वोक्त छन्द रूपी चक्र जो शरीर में हैं वे द्विपदा—द्विदलयुक्त, त्रिपदा—त्रिदलयुक्त, षट्पदा—षड्दलयुक्त हैं और कुछ समान छन्द—समान दल वाले और कुछ छन्द रहित—विषम दल वाले एवं अधिक दल वाले भी हैं। उन छन्द रूपी चक्रों का प्राण एवं ध्यान मार्ग से क्रमशः भेदन करने से परम सुख एवं शान्ति प्राप्त होती है।

ब्रह्म की प्राप्ति

इस स्थिति को प्राप्त करने के पश्चात् योग यज्ञ का साधक ब्रह्म को जानने लगता है, जैसा कि निम्न मन्त्र में वर्णित है—

तस्मिन् हिरण्ययेकोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद् वे ब्रह्म विदो विदुः ॥

(अथर्व० कां० १० । सू० २ । मं० ३२)

उस हिरण्य कोश में जिसमें तीन अरे लगे हुए हैं और जो तीन स्थानों में प्रतिष्ठित है, उसमें जो आत्मा रूपी यक्ष है, उसको ही ब्रह्मज्ञानी योगी ब्रह्म रूप से जानते हैं। यही ब्रह्म की पुरी है। मन्त्र में जो तीन अरे बताये हैं, वे भूत, भविष्यत् एवं वर्त्तमान रूपी अरे हैं और तीन प्रतिष्ठा के स्थान, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर रूपी हैं। पुनः वेद मन्त्र कहता है :—

अपराजिता पुरी में ब्रह्म का प्रवेश

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।
पुरं हिण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥

(अथर्व० कां० १० । सू० २ । मं० ३३)

यह मानव देह ही ऐसी उत्तम, ऐसी सुन्दर, ऐसी महिमामयी पुरी है कि जिस प्रकार भटकती हुई हरिणी आश्रय को प्राप्त कर प्रसन्न होती है. उसी प्रकार यश से युक्त होकर ब्रह्म ने इस अपराजित और दुर्मेद्य पुरी में प्रवेश किया है। ऐसी सुन्दर देहरूपी पुरी जिसमें देवगण, ऋषिगण, इन्द्र एवं ब्रह्म भी विराजमान हों, उसमें किसी वस्तु की भी कमी नहीं। जैसे शहद के छत्ते पर मधुमक्खियाँ बैठी रस का पान करती हैं, वैसे ही अमृत से आवृत इस पुरी में देव, ऋषि एवं ब्रह्म शक्तियाँ आनन्द की प्राप्ति करती हैं। पुनः वेद कहता है कि

अमृत पुरी

यौवैतां ब्रह्मणोवेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्मश्च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥

(अथर्व० कां० १०। सू० २। मं० २६)

यह शरीर रूपी पुरी व्यापक जीवनी शक्ति से, अमृत से आवृत है। इस अमृत का पान यदि देवगण करेंगे, तो यहाँ देव भी रह सकेंगे। यदि असुरों ने इसका अमृत घट प्राप्त कर लिया और उसे पी गये, तो अयोध्या नगरी कैसी ? अतः जो ब्रह्मवेत्ता व्यक्ति इस पवित्र पुरी को जानता है, उसको इस शरीर रूपी यज्ञशाला के ब्रह्मा एवं यज्ञ के देव परमात्मा चक्षु देते हैं, वास्तविक दर्शन शक्ति उनको प्राप्त होती है। उसका ही प्राण अपनी सम्पूर्ण शक्तियों से जागृत रहता है और उसके वश सब इन्द्रियाँ आदि प्रजा एवं देवगण रहते हैं। ऐसी पुरी का आश्रय लेकर जिसमें ब्रह्म का भी आनन्द निहित है और जो सबका सर्वोत्तम लक्ष्य है, यदि उसको प्राप्त नहीं करता, तो उसका जीवन व्यर्थ है।

सृष्टि सूत्र से सूत्रधार का दर्शन

इस पुरी की रचना बड़ी सुन्दर है। विश्व में जो तत्त्व एवं शक्तियाँ दृश्य एवं अदृश्य रूप से इसका संचालन कर रही हैं, उनका सामर्थ्य सूत्र सर्वव्याप्त है। उसी नियम सामर्थ्य में ब्रह्माण्ड में ब्रह्म

की प्रजा भी ओतप्रोत है। इस नियम रूपी सूक्ष्म सूत्र का दर्शन, इस सृष्टि के सूत्रधार का भी दर्शन कराने में समर्थ होता है, जैसा कि

'यो विद्यात्सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥'

(अथर्व० कां० १० । ८ । ३७)

इस सृष्टि के महान् सूक्ष्मतम सूत्र, व्यापक प्राण शक्ति के स्वरूप या ऋत अर्थात् गुण, कर्म, स्वभाव का दर्शन करके तत्सम्बन्धित नियामक शक्तियों के भी नियामक ब्रह्म को जानना ही वास्तव में ज्ञान है। वही ज्ञान की परिपूर्णता है। दृष्टि से उसी अद्‌भुत का दर्शन करें। हमारी दृष्टि इस विशाल विश्व को कैसे देखे? हमारे कान विश्व में व्याप्त शब्दों को कैसे सुनें? हमारे हाथ विश्व की समस्त वस्तुओं को कसे ग्रहण करें? हमारी बुद्धि समस्त विश्व को कैसे जाने? इस गूढ़ समस्या का उपाय वेद ने आत्मवित् होना बताया है। आत्मवित् होना ही इसका हल है। संसार को जानने के लिये अपने को जानो। वेद इसके लिये उपदेश कर रहा है:—

पुण्डरीक रूपी देह

पुंडरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृत्तम्।
तस्मिन्यद् यक्षमात्वन्वत् तद्वे ब्रह्मविदो विदुः ॥

(अथर्व० कां० १० । ८ । ४३)

यह कमल सदृश रचना वाला शरीर है। इसकी आँखें, इसका मुख, इसके हाथ, इसके पैर, इसकी नाभि, इसका हृदय. सभी कमल से उपमा योग्य बना हुआ है अतः यह पुण्डरीक ही है। इस शरीर में अनेक कमल विद्यमान हैं। यह नवद्वारों से सुशोभित है। आँख, नाक, कान, मुख आदि ७ द्वार और १ सुपुम्ना का ऊर्ध्व द्वार ब्रह्म-रन्ध्र का और एक द्वार सुपुम्ना का अधोभाग का जो पृष्ठवंश में नीचे है, जहाँ कुंडलिनी का वास है, इस प्रकार नवद्वार युक्त है। सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों से युक्त प्रकृति के संघातों से आवृत है। इसकी रचना को अच्छी तरह जान लेने से सृष्टि रचना का अद्‌भुन ज्ञान प्राप्त हो जायेगा और इसके केन्द्र में जो यक्ष रूप से

आत्मा विराजमान है, उसे जान लेने पर ब्रह्म का भी ज्ञान हो जायगा।

देवी यज्ञ

ब्रह्माण्ड की अद्‌भुत रचना और उस ब्रह्माण्ड की शक्तियों का सूक्ष्म रूप से इस देह में प्रवेश और कार्यशीलता को वेद की परिभाषा में यज्ञ की संज्ञा दी गई है। जैसा कि :—

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥

(यजुः अ० ३१। मं० १४)

देवों ने जिस पुरुषरूपी हवि से आयु रूपी यज्ञ का विस्तार किया, उसमें वसन्त ऋतु घृत था, ग्रीष्म ऋतु समिधा थी और शरद् हविद्रव्य था।

सृष्टि का प्रारम्भ यज्ञ से

सृष्टि निर्माता परम पुरुष ने सृष्टि की रचना का प्रारम्भ जिस क्रिया द्वारा किया, वह यज्ञ ही था। जैसा कि :—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशुंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्याग्राम्याश्च ये॥

(यजुः अ० ३१। मं० ६)

अर्थात् उस सर्वहुत यज्ञ से दूध, दही, घृतादि रस, आहार का सृष्टि में प्रादुर्भाव हुआ और फिर विविध प्रकार से सृष्टि उत्पन्न हुई।

परमात्मा से वेदों का प्रादुर्भाव

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

(यजुः अ० ३१। मं ७)

उस सर्वहुत यज्ञ से ऋग्यजुः सामाथर्व वेद प्रकट हुए अर्थात् सृष्टि के रचे जाने से सृष्टि का ज्ञान अपने पृथक्-पृथक् तत्त्वों में

अनुभवगम्य होने की स्थिति को प्राप्त हो गया। इसी प्रकार विविध रचना यज्ञ के द्वारा ही हुई, ऐसा वर्णन पुरुषसूक्त में विद्यमान है और इस सम्पूर्ण रचना का वर्णन ऐसा प्रस्तुत किया गया, मानो यह ब्रह्माण्ड विशाल वेदी ही है, एक विशाल यज्ञ है। अतः विश्व का और हमारा यज्ञमय सम्बन्ध मूल रूप से है। इस आधार पर हमारा जीवन भी यज्ञ है और हमें भी इस जीवन में यज्ञों का ही अनुष्ठान करना चाहिए। यही कर्म श्रेष्ठतम्, सृष्टि अनुकूल एवं परमात्मा के अनुकूल है। अतः हमारे यज्ञमय कर्मों का परमात्मा से सम्बद्ध होना स्वाभाविक है अर्थात् यज्ञ के द्वारा हमारा सम्बन्ध परमात्मा से होता है। इसलिये हमारे जीवन का मुख्य उद्देश्य भी यज्ञ ही है।

यज्ञ की प्राधान्यता

यज्ञ की मुख्यता को प्रकट करने के लिये वेद में एक स्थान पर प्रश्न है :—

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः।
पृच्छामित्वा वृष्णो अश्वस्यरेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम॥

(यजुः अ० २३। मं० ६१)

अर्थात् मैं तुमसे पूछता हूँ कि पृथिवी का परम अन्त कहाँ है और विश्व की नाभि—केन्द्र कहाँ है। सेवन समर्थ प्राणों के केन्द्र सूर्य का रेतस् क्या है और इस महान् ब्रह्माण्ड में व्याप्त वाणी क्या है ?

इन प्रश्नों का उत्तर आगामी मन्त्र में ही निम्न प्रकार दिया गया है :—

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम॥

(यजुः अ० २३। मं० ६२)

यज्ञ की यह वेदी ही पृथिवी का परम अन्त है अर्थात् पृथिवी पर जीवन में अपनी सब कामनाओं की पूर्ति इसी वेदी से होती है। लोक और परलोक, ऐहिक और पारलौकिक सुख, संसार और ईश्वर, धर्म और अर्थ, काम और मोक्ष, सभी वेदी से सम्पन्न होते हैं। इस वेदी में जिन यज्ञों का सम्पादन होता है, वे विश्व के कार्यों के ज्ञान

सम्पन्न कराने वाले और कामनाओं की पूर्त्ति कराने वाले हैं। अतः ये यज्ञ ही इस विश्व का केन्द्र—नाभितुल्य—हैं। बाह्य सृष्टि में सूक्ष्म पदार्थों से लेकर स्थूल पदार्थों में जिस प्रकार कार्य चल रहा है, उसका दर्शन इन यज्ञों में होता है। इसी प्रकार हमारे शरीर की सूक्ष्म व स्थूल रचना में स्थूल व सूक्ष्म रूप से जो कार्य हो रहा है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन इन यज्ञों में होता है।

यज्ञ साधना का लाभ

इन यज्ञों की साधना से बाह्य विश्व एवं अपने शरीर रूपी विश्व इन दोनों का ही दर्शन होता है और इस रहस्य को यथावत् जानकर विश्व के इच्छित भाग पर अनुकूल प्रभाव यज्ञों द्वारा डाला जा सकता है। इसलिए यज्ञ ही संसार के सब कार्यों एवं कामनाओं को पूर्त्ति के साधनों की नाभि है तथा अध्यात्म एवं अधिभूत को इन यज्ञों से प्रभावित किया जा सकता है। इन यज्ञों में सूर्य से उत्पन्न प्राणरूपी शक्ति ही सोम है और यज्ञ में प्रयुक्त ब्रह्म की वेदवाणी ही ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

इस प्रकार वेद ने यज्ञवेदी-यज्ञक्रिया, यज्ञ से उत्पन्न सोम एवं यज्ञ की वाणी को परम महत्त्व प्रदान किया है। एक अन्य मन्त्र में कहा है :—

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।

(यजुः अ० ६। मं० १)

अर्थात् हे सर्वप्रसव करने वाले सवितादेव ! आप समस्त ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिए यज्ञ को और यज्ञपति को प्रसव कीजिये। जन्म दीजिये। यज्ञ अथवा योग ही दिव्य जीवन प्राप्ति का साधन है। इस प्रकार यज्ञों का महत्त्व जीवन के लिए अनिवार्य है। जीवन की भिन्न-भिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों की साधना करनी चाहिए।

वेद यज्ञ की प्रेरणा दे रहे हैं

चारों वेदों के प्रारम्भ के मन्त्र यज्ञ की प्रेरणा देकर बता रहे हैं

कि यज्ञ ही प्रथम एवं प्रधान कर्त्तव्य है। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र—अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्—में यज्ञपद आया है। यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में इसी यज्ञ को—श्रेष्ठतमायकर्मणे—परमश्रेष्ठ कर्म नाम से सम्बोधित किया गया है। सामवेद के प्रथम मन्त्र में—निहोता सत्सिबर्हिषि—यहाँ बर्हिषि पद यज्ञ के लिए प्रयुक्त है और अथर्ववेद का—वाचस्पति र्बला—शब्द भी वाक्पति का बल, यज्ञ को ही बता रहा है।

ऋग्वेद से यज्ञ की प्रेरणा

चारों वेदों के अपने-अपने प्रधान देवताओं का इसमें प्रमुख स्थान है। ऋग्वेद के—अग्निमीडे—मन्त्र का देवता अग्नि है। भूलोक का देवता भी यही अग्नि है। यज्ञ के लिए अग्नि की आवश्यकता है। भौतिक यज्ञ भौतिक अग्नि से होता है। सृष्टि यज्ञ भी सूर्य रूपी अग्नि एवं उसके परिवर्तित रूप विविध अग्नियों से होते हैं।

अध्यात्म यज्ञ योगरूपी अग्नि या आत्मारूपी अग्नि तथा तदधीन प्राण, मन, चितादि अग्नियों के आश्रित होते हैं। अतः सभी प्रकार के यज्ञों के लिए अग्निदेव को सर्वप्रथम अनिवार्य आवश्यकता है अर्थात् अग्नि के बिना कोई भी यज्ञ नहीं हो सकता। इसीलिए अग्नि ही सर्वप्रथम सबका हित साधक होने से पुरोहित है। इसी ज्ञान को सर्वप्रथम बताने के लिए कि अग्नि तुम्हारा विनाशक नहीं है, यह तो तुम्हारा पुरोहित है यह भाव लेकर इसकी स्तुति अर्थात् इसके गुणों का ज्ञान प्राप्त करो तथा ब्रह्माण्डरूपी यज्ञ के लिए अग्निदेव परमात्मा ही है। वही पुरोहित रूप में विद्यमान हैं इसे अच्छी प्रकार हृदयंगम करो।

यजुर्वेद से यज्ञ की प्रेरणा

यज्ञ के लिए दूसरा आवश्यक देव वायु है। यजुर्वेद का सम्बन्ध अन्तरिक्ष से है। अन्तरिक्ष का अधिष्ठाता देव वायु है। भौतिक अग्नि वायु के बिना अस्तित्वविहीन हो जाती है। शरीरस्थ आत्मारूपी अग्नि प्राणादि वायु के बिना चेष्टारहित हो जाती है। अतः

दोनों प्रकार कीं भौतिक और आध्यात्मिक अग्नियों के लिए जो आधार अन्न, ईन्धन चाहिए, उसी से उसका बल वढ़ता है। दोनों अग्नियों के लिए वायु ही अन्न व बल-तेज को देने वाला है। इसी-लिए यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में—इषेत्वा, ऊर्जेत्वा—वायवस्थ—उस तुफ अग्नि के लिए आहार और बल के दाता विविध प्रकार की वायु ही है। यह कहकर अग्नि के लिए वायु को आवश्यकता प्रति-पादित की है।

साम और अथर्व से यज्ञ की प्रेरणा

सामवेद का सम्बन्ध द्युलोक से है। द्युलोक का देव सूर्य है। सूर्य की ही उपस्थिति में यज्ञों का सम्पादन होता है। पृथिवीस्थ यज्ञ सूर्य रश्मियों के माध्यम से द्युलोक तक पहुँचता है। अध्यात्म यज्ञों में सूर्य के भी सूर्य परमात्मा को प्राप्त किया जाता है और अथर्ववेद के प्रधान देवता अंगिरा की यज्ञ में आवश्यकता रहती है। यदि यज्ञ के ईन्धन का परिवर्तन अंगिरा में—अंगारों में - निर्धूम ज्योति में परिवर्तन न हो, तो यज्ञ अपनी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकेगा। अतः चारों वेदों के देवता या ऋषि यज्ञ के आवश्यक साधन हैं।

चारों वेदों से यज्ञकर्त्ताओं का प्रतिपादन

ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र ने यज्ञ के लिए—पुरोहित एवं ऋत्विज्—की आवश्यकता बताई। यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र ने यजमान का प्रति-पादन किया। सामवेद के प्रथम मन्त्र ने होता का प्रतिपादन किया और अथर्ववेद ने वाचस्पति—ब्रह्मा की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। अर्थात् यज्ञ के लिए पुरोहित, यजमान, होता एवं ब्रह्मा के निरूपण का वेद ने यज्ञ के महत्त्व को प्रकट करने के लिए तथा यज्ञ-मय जीवन बनाने के लिए उपदेश किया।

यज्ञ फल का ऋग्वेद से निर्देश

इसी प्रकार वेद के प्रथम मन्त्रों ने यज्ञों के फलों का भी निर्देश किया है। ऋग्वेद ने इसी यज्ञ की अग्नि को ही—ऋत्विजं होतारं

रत्नधातम्—कहा है। अर्थात् नियमित गति, ऋतुओं का निर्माण, हव्य पदार्थों का गृहीता, वितरक, दाता तथा रमणीय पदार्थों को धारण करने वाला एवं दाता कहा है। सृष्टि के अन्दर जो रमणीयतम रत्नादि हैं, उनकी प्राप्ति कराने वाला भी यही है। जीवन में सबसे रमणीय रत्न तो परमात्मा ही है।

यज्ञ फल का यजुर्वेद से निर्देश

यजुर्वेद ने—इषे त्वा, ऊर्जे त्वा—कहा। अर्थात् यज्ञ अन्न, विद्या, विज्ञान, बल, रस, आनन्द आदि की प्राप्ति कराने वाला है। संसार में सर्वोत्कृष्ट अन्न ब्रह्म है। सर्वोत्कृष्ट विद्या—विज्ञान ब्रह्म ही है। वही सब बलों का बल, रसों का रस और आनन्दों का भी आनन्द है। संसार के पदार्थों में जो अन्न, बल, रस एवं आनन्द है, वह उसी का है।

यज्ञफल का साम और अथर्व से निर्देश

सामवेद ने यज्ञ का फल—वीतये—कहा। प्रकाश, गति, कान्ति, उत्पत्ति अर्थात् समृद्धि आदि यज्ञ से प्राप्त होती है। सब प्रकाशों के प्रकाशक, सब गतियों के गतिदाता, समस्त कान्तियों से श्रेष्ठ कान्तिवाले, सबके उत्पत्तिकर्ता एवं समृद्धिदाता परमात्मा की भी प्राप्ति इसी योग यज्ञ से है। संसार के पदार्थों में जो अन्न, बल, रस की प्राप्ति एवं आनन्द का अनुभव होता है, वह सब उसी परमात्मा का दिया हुआ कुछ अंशमात्र है। अतः उस प्रभु की स्तुति करें, यह भाव—गृणानः—पद में रखा गया है। इस प्रकार यज्ञ से समस्त प्रकार के तेज, बलादि की प्राप्ति होती है। उसको अपने में धारण करने को अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र के—तेषां तन्वो अद्य दधातु में—इन शब्दों में कहा गया है।

इनका भूर्भुवः स्वः में समावेश

वेदों के इस मूलभूत सिद्धान्त को—भूर्भुवः स्वः—इन तीन शब्दों से व्यवहृत किया गया है। इन्हीं तीनों व्यवहृतियों में त्रयी विद्या का

बीजरूप में प्रतिपादन है। इन्हीं तीनों शब्दों से तीनों लोकों को, तीनों लोकों में स्थित देवों का, तीनों अग्नियों का, तीनों प्राणों का, वेद चतुष्टय का, त्रयो विद्या के रूप में विशाल ज्ञान प्राप्त होता है।

यही महा व्याहृतियाँ और इनके लोक पुरुष में—

—नाभ्या आसीदन्तरिक्षं—शीर्ष्णोद्यौः--पद्भ्यांभूमिः—

(यजुः अ० ३१। मं० १३)

रूप में विद्यमान है। जब यज्ञों के क्रम से इस पुरुष रूपी यज्ञ-शाला का--साधन का—ज्ञान होता है तो इस यज्ञशाला में बैठे सप्त होताओं का भी ज्ञान हो जाता है, जिसके लिए वेद ने कहा है कि—इस शरीर में

शरीर यज्ञ में सप्त होता ऋषि

'यज्ञस्तायते सप्तहोता'

(यजुः अ० ३४। मं० ४)

सात होता बैठे हुए अपना यज्ञ कर रहे हैं। जब इस प्रकार यज्ञमय पुरुष का ज्ञान हो जाता है, मधुर संगीत में अनुभूति प्रकट करने लगता है—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे, सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥

(यजुः अ० ३४। मं० ५५)

सात ऋषि इस शरीर में स्थित हैं। ये ही सातों ऋषि इस शरीर की निरन्तर रक्षा कर रहे हैं। सुप्त अवस्था में ये सातों, शरीर में व्याप्त ऋषि—जीवात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसी स्वप्नावस्था में भी जिनको कभी निद्रा प्राप्त नहीं होती, ऐसे जीवात्मा की रक्षा करने वाले प्राणापानरूप दो देव सदा जागते रहते हैं।

इस मन्त्र में देव एवं ऋषियों को शरीर में स्थित बताया गया है: ये सात ऋषि—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, छठा मन एवं सातवाँ बुद्धितत्त्व है, जो शरीर में निवास करते हैं। जागृत अवस्था में निरन्तर कार्य-शील रहते हैं और प्राणपान देव तो सदा ही जागृत रहते हैं तथा ये

नद्रित अवस्था में भी जागरूक रहते हैं।

इसके अतिरिक्त इन्द्रियों एवं मन में ऋषितत्त्वों की स्थापना का वेद में निम्न प्रकार भी वर्णन प्राप्त है :—

'वसिष्ठ ऋषिः···त्वया प्राणं गृह्णामि' (यजुः अ० १३। मं० ५४)
'भरद्वाजऋषिः ··त्वया मनो गृह्णामि' (यजुः अ० १३। मं० ५५)
'जमदग्निर्ऋषिः···त्वया चक्षुर्गृह्णामि' (यजुः अ० १३। मं० ५६)
'विश्वामित्रऋषिः त्वया श्रोत्रं गृह्णामि' (यजुः अ० १३। मं० ५७)
'विश्वकर्मऋषिः···त्वया वाचं गृह्णामि' (यजुः अ० १३। मं० ५८)

वसिष्ठ ऋषि

अर्थात् वसिष्ठ ऋषि के द्वारा प्राण की दिव्य शक्ति को ग्रहण करता हूँ। वसिष्ठ का तात्पर्य है, जो अतिशय अपने वश में करने वाला है। प्राण ही ऐसा तत्त्व है, जिसके वश में सब हैं। प्राण के न रहने पर ये सब भी शरीर को छोड़कर चले जाते हैं, अतः प्राण वसिष्ठ हैं।

भारद्वाज ऋषि

भारद्वाज ऋषि द्वारा मन की दिव्य शक्ति को प्राप्त करना चाहिए। भारद्वाज का तात्पर्य है, जो बल को भरने वाला है। यदि मन निर्मल है, तो शरीर निश्चेष्ट हो जाता है। निरुत्साहित व्यक्ति चाहे कितना ही वसिष्ठ हो, वह कुछ नहीं कर सकता। अतः भारद्वाज ऋषि द्वारा मनोबल और शरीर को उत्साहपूर्ण बनाना चाहिए ऐसी प्रक्रिया का वेद ने संकेत किया।

जमदग्नि ऋषि

इसी प्रकार जमदग्नि ऋषि के द्वारा चक्षु की दिव्यशक्ति को ग्रहण करना चाहिए। जमदग्नि का तात्पर्य है, तेजयुक्त अग्नि तथा प्रकाश आदि। प्रकाश या अग्नि रहित नेत्र कुछ नहीं कर सकते। नेत्र में वह तेज चाहिए कि अभद्र कार्य दृष्टिमात्र से नष्ट हो जाएँ और 'भद्रं पश्येम' सार्थक हो जाये। अतः नेत्रों को तेज एवं दीप्ति-

युक्त रहने के लिए जमदग्निऋषि की आवश्यकता है।

विश्वामित्र ऋषि

विश्वामित्र ऋषि द्वारा दिव्य श्रोत्रशक्ति को प्राप्त करना चाहिए। विश्वामित्र का तात्पर्य है सबका मित्र। यदि आपके कानों में विश्वामित्र ऋषि विद्यमान है, तो आप किसी की निन्दा श्रवण में में अपने कानों को प्रवृत्त न होने देंगे। उस अवस्था में 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम' (यजु: अ० २५। मं० २१) सदा कल्याणकारिणी वेदवाणी का श्रवण होता रहेगा।

विश्वकर्मा ऋषि

विश्वकर्मा ऋषि द्वारा वाणी को ग्रहण करने का वेद ने उपदेश किया है। जिसने अपनी वाणी में विश्वकर्मा ऋषि को स्थापित कर लिया, वह अपने सब कार्य सिद्ध कर सकता है। विश्वकर्मा का तात्पर्य है, जो समस्त कार्यों को कुशलता एवं सौन्दर्य से निर्मित करता है। विश्वकर्मा महान् निर्माण करने वाला कला का देव है। यदि हम वाणी को ऐसा बना लें कि उसके द्वारा प्रेम से निर्माण का कार्य होता रहे, तो यह बड़ी भारी विजय है।

प्रार्थनोपासना की आवश्यकता

हमारे शरीर में ऋषि एवं देवों को स्थापना या उनकी अनुभूति अध्यात्म पक्ष का उत्तम अंग है। इसीलिये अपनी शक्तियों के विकास के लिए देवों एवं परमात्मा की स्तुति एवं उनसे विविध शक्तियों की पूर्ति या प्राप्ति की कामना की जाती है। उसके मन्त्र विद्यमान हैं। ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमात्मा की विविध देव शक्तियों का सम्बन्ध इस पिण्ड रूपी अध्यात्म से है। इसलिये उसकी प्राप्ति के लिये प्रार्थना करना श्रेयस्कर है।

पवित्रता के लिये पितरों से प्रार्थना

अपने अन्दर शक्तियों के परम स्रोत से शक्तियों या गुणों की

प्राप्ति से हम भी शक्ति एवं गुणसम्पन्न बन सकेंगे। जो परम शक्ति सम्पन्न है, वह ज्ञान का भी आदि क्षेत्र है। इसलिये वेदों में अपनी बौद्धिक एवं मानसिक शक्तियों की पवित्रता तथा प्राप्ति के लिए विश्व की तत्सम्बन्धी शक्तियों से प्रार्थना की गई है :

'पुनन्तु मा पितरः सौम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः
पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुर्षा।'

(यजु: अ० १९। मं० ३७)

मुझको सोम सम्पादक पितृजन पवित्र करें। अर्थात् जो ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न, अध्यात्म विद्या से रत हैं, वे सुख एवं शान्तिदायक पवित्र एवं जीवनोन्नति के कार्य के लिये मुझे पवित्र करें, जिससे उस पवित्रता की पात्रता से मुझे भी सोम विद्या प्राप्त हो। मैं भी ऊर्ध्व-रेता बनकर वीर्य को सोम रूप बनाकर अपने ब्रह्मकोश शिर में जो देव एवं ऋषिगण हैं, उनको उस सोम से पुष्ट, बलवान् एवं तेजस्वी कर सकूं।

विविध पितृ शक्तियाँ

इस विद्या में जो मेरे प्रथम गुरु या पितृतुल्य हैं, जिनसे प्रथम प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई है, उनके भी जो पितृतुल्य गुरु हैं, वे मेरे लिये पितामह हैं। उनका भी आशीर्वाद, उनसे भी ज्ञान एवं शक्तिप्राप्ति हो। वे भी मुझे और अधिक पवित्र करें तथा मेरे ज्ञान परम्परा में जो पितामह हैं, वे मेरे पितामहतुल्य हैं। वे भी अपनी देवी शक्तियों एवं ज्ञान तथा कर्म की शुद्ध परम्पराओं को देते हुए मेरे कर्मों का निरीक्षण करें। मेरे कार्यों में, ज्ञान में जो त्रुटियाँ हों उनका परि-ष्कार कराके मुझे पवित्र करें, जिससे मैं पवित्र एवं देवी शतायु को अर्थात् पूर्ण आयु को प्राप्त कर सकूं। यही पूर्ण एवं पवित्र आयु की प्राप्त ही मनुष्य के लिए अमृत प्राप्ति है।

पितरों एवं देवों का भेद

इस उपरिनिर्दिष्ट मन्त्र में विविध पितरों से पवित्रता की प्रार्थना की गई है। पितर संज्ञा उनकी है, जो मूलभूत पूंजी अर्थात् कारण

इस मंत्र द्वारा शरीर के अंग-प्रत्यंगों की शुद्धि तथा चरित्र की शुद्धि का वर्णन है। इसी प्रकार बुद्धि की परम पवित्रता के लिये निम्न मन्त्र वेद में आते हैं :—

सदसस्य तिभद्‌भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषं स्वाहा ।।
यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया भामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु ।।
मेधां मेवरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे ।।

(यजुः अ० ३२ । मं० १३-१५)

अद्‌भुत गुणवाले, जीव के कमनीय, प्रिय, ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर से मेधा को याचना करता हूँ। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! ऋषिमुनि आदि विद्वान् गण तथा पालक जन जिस मेधा बुद्धि की उपासना करते हैं, उस बुद्धि से आज मुझे मेधावी बना। वरणीय वरुण परमेश्वर मुझे मेधा बुद्धि दें। अग्रनायक अग्नि तथा प्रजा-पालक परमेश्वर मुझे मेधा प्रदान करें। ऐश्वर्यशाली इन्द्र तथा सर्व-प्रेरक वायु रूपी परमेश्वर मुझे मेधा प्रदान करें।

सविता देव से बुद्धि एवं मार्ग की प्राप्ति

इन मन्त्रों में देव एवं पितर जिस बुद्धि की कामना करते हैं, उसकी प्राप्ति की प्रार्थना की गई है, क्योंकि सृष्टि में पितृ एवं देव तत्त्वों में अद्‌भुत शक्ति है। हमारा शरीर भी पितृ एवं देव तत्त्वों से बना है। उनका इसमें वास है, अतः उनकी शक्तियों की जागृति से हम पितर एवं देव कोटि के बन सकेंगे। ऐसी बुद्धि वरुण, प्रजा-पति, इन्द्र, वायु, धाता आदि देवों से, उनके गुणों का अध्ययन करके, उनके अनुकूल कार्य करने के अपने विचार बनाकर कार्य करने से सम्पन्न होती है। ऐसी देवबुद्धि की प्राप्ति से मनुष्य सत्कर्मों की ओर लगा रहता है और उसको परमात्मा के तेज की भी प्राप्ति होती है, जिसका वर्णन निम्न मन्त्र में है :—

द्रव्य को देते हैं। पिता स्थूल देहरूपी पूंजी को देता है अतः पितर है। परन्तु जो इस शरीर के विकास में और इसके व्यवहार को सम्पन्न कराते हैं, वे देव हैं।

इसी प्रकार मूल ज्ञान का—अविकसित ज्ञान सम्पत्ति का—दाता भी पितर है और जो उस ज्ञान का विकास एवं उसके व्यवहार का विकास कराने वाले हैं, वे देव हैं। पिता ही पितर संज्ञक है। किसी व्यापारादि के लिए मूल धन दाता पितृतुल्य है। उस धन द्वारा व्यापार विकास में सहयोगी देवतुल्य हैं। क्योंकि देवों से विकास, उन्नति, प्रसन्नता, आनन्द, क्रीड़ा, व्यवहार, यश, ऐश्वर्य एवं कान्ति की प्राप्ति होती है।

पूंजी का विनिमय देवमार्ग है। पूंजी का सुरक्षित रखना पितृ मार्ग है। ज्ञान को रट-रटाकर अर्थहीन सुरक्षित रखना पितृमार्ग है और उस ज्ञान से व्यवहार, आनन्द प्राप्ति और स्वयं आनन्दित होकर सबको लाभ एवं सुख पहुँचाना देवमार्ग है।

पवित्रता के लिए देवों से प्रार्थना

अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पितरों एवं देवों, इन दोनों शक्तियों से अपनी समृद्धि करनी पड़ती है, अतः निम्न मन्त्र में देव-जनों से भी पवित्रता के लिए प्रार्थना की गई है।

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥

(यजुः अ० १९ । मं० ३९)

अर्थात् मुझे देवजन पवित्र करें। मेरे शरीर को पवित्र करें। मेरे मन और बुद्धियों को पवित्र करें। मेरे कर्मों को पवित्र करें। संसार की समस्त आधिदैविक एवं आधिभौतिक शक्तियाँ मुझे पवित्र करें। जातवेदा जो परमात्मा है तथा उसकी जो वेदवाणी है, वह मुझे पवित्र करे। जो विविध प्रकार की दृष्ट एवं अदृष्ट सर्वत्र प्रसारित अग्नियाँ हैं, वे मुझे पवित्र करें।

बुद्धि की पवित्रता एवं प्राप्ति की प्रार्थना

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।

(यजु: अ० ३७ । मं० २)

हम सकल जगत् के उत्पादक, वरणीय देव का, जो अति शुद्ध ग्रहण करने योग्य तेज है, उसको धारण करें, जो कि हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ कार्यों में प्रेरित करे। इसी प्रकार अनेक मन्त्रों में बुद्धि की प्रार्थना है।

देवीं धियं मनामहे ।

(यजु: अ० ४ । मं० ११)

हम देवी बुद्धि की कामना करते हैं। इस प्रकार की पवित्र बुद्धि की प्राप्ति के लिये साधना करनी पड़ती है। तभी वह प्राप्त होती है।

व्रताचरण करना चाहिये

अतः वेद ने कहा—

व्रतं कृणुत—व्रतं कृणुत ।

(यजु: अ० ४ । मं० ११)

व्रत करो, निश्चय से व्रत करो। क्योंकि

व्रत का लाभ

व्रतेन दीक्षामाप्नोति ।

(यजु: अ० १९ । मं० ३०)

व्रत से दीक्षा की प्राप्ति होती है। अर्थात् आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकारी बन जाता है। इस प्रकार व्रतानुष्ठान करने से—

दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति
श्रद्धया सत्यमाप्यते ।

(यजु: अ० १९ । मं० ३०)

दीक्षा प्राप्त होने पर दक्षिणा-वृद्धि, उन्नति, समृद्धि का साधन प्राप्त होता है और उस समृद्धि से श्रद्धा की जागृति होती है तथा

श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति हो जाती है।

जीवन में सत्य की उपलब्धि, सत्य का दर्शन ही वास्तविकता है। सत्य से विपरीत अवास्तविकता है। अतः सत्य का अनुष्ठान सत्य पर दृढ़ स्थिति करने से होती है। सत्य प्रतिज्ञ होकर यज्ञ का अनुष्ठान-कर्ता सत्यस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए यज्ञ के समय यजमान को सत्य व्रत की ही प्रतिज्ञा करनी पड़ती है, जैसा कि

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥

(यजु: अ० १। मं० ५)

हे व्रतपति ! अग्निस्वरूप ! ज्ञानप्रकाशक परमात्मा ! मैं आपकी प्राप्ति का व्रत ग्रहण करता हूँ। उसको मैं पूर्ण करने में समर्थ हो सकूं। आप भी कृपा करके मेरे उस व्रत को पूर्ण कीजिये। यह मैं अनृतमागमय जो समस्त लोक-व्यवहार है, जिसे वेद ने अविद्या, असंभूति, विनाश नाम से कहा है, उससे मैं सत्य को—विद्या, संभूति को—शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करता हूँ।

यज्ञ से भद्र की प्राप्ति

यह सब इसलिए करना है कि यह शरीर परमात्मा ने श्रेष्ठ कर्म करने के लिए दिया है। इस शरीर को अत्यन्त पवित्र श्रेष्ठ, दिव्य एवं शुभकर्मों से युक्त करना चाहिए। जैसा कि निम्न मन्त्र में उपदेश है :—

इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुंचामि।

(यजु: अ० ४। मं० १३)

हे प्रभु ! यह तेरी साधना के लिए यज्ञ सम्बन्धी मेरा शरीर है। इसमें जो त्याज्य भाग है, उसे पृथक् करता हूँ। ऐसी साधना से जो साधक साधना करे तो 'दुरितानि परासुव' (यजु: अ० ३० मं० ३) दुरित—बुराइयाँ दूर होती जायेंगी और—यद्भद्रं तन्न आसुव—अच्छाइयों की उपलब्धि होगी।

हमारे लिये भद्र क्या है ? वेद कहता है—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम—भद्रं पश्येम'

(यजुः अ० २३ । मं० २१)

हम भद्र ही कानों से सुनें और भद्र ही देखें। इन दोनों प्रकार के भद्र की प्राप्ति यज्ञ से ही हो सकती है। क्योंकि

उतत्वःपश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्।

(ऋ० मं० १। सू० ७१। मं० ४)

इस मन्त्र में वेदवाणी का दर्शन और उसके सुनने का जो आदेश है, उससे पूर्व मन्त्र में निर्दिष्ट, देखने व सुनने की पुष्टि वेदवाणी के लिए ही होती है। वेदवाणी से यज्ञ होता है। उसमें भद्र वेदवाणी का श्रवण तथा यज्ञ के भद्र रूप का दर्शन होता है। अतः भद्र यज्ञ ही है। यज्ञ भद्र इसलिए भी है कि इसको साधना से परब्रह्म की भी प्राप्ति होती है। सर्व भद्रों का वही भद्र है। उससे बढ़कर भद्र प्राप्ति अन्य कुछ है ही नहीं। इस दृष्टि से अपने शरीर को यज्ञ सम्बन्धी बनाना एवं यज्ञमय बनाना आध्यात्मिक उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। योग यज्ञ द्वारा दिव्य चेतन्य की प्राप्ति हो जाने पर भद्र ही भद्र दिखाई पड़ता है तथा ओ३म् ही सुनाई पड़ता है।

यज्ञ से शरीर की श्रीवृद्धि

इस प्रकार यज्ञमय शरीर बनाने से शरीर में दिव्य छटा आ जाती है और साधक कहता है :—

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणां अमृतं सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥१॥
जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोक्षः प्रमोदा अंगुलीरंगानि मित्रं मे सहः ॥२॥
बाहू मे बलमिन्द्रियँ हस्तौ मे कर्मवीर्यम्।
आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥३॥
पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमँसौ ग्रीवाश्चश्रोणी।
ऊरु अरत्नी जानुनी विशो मे ऽगानि सर्वतः ॥४॥
नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेपचितिर्मसत्।
आनन्द नन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः।

जंघाभ्यां पद्भ्यां धर्मोसि विशि राजा प्रतिष्ठितः ।।५।।

(यजुर्वेद अ० २० । मं० ५, ६)

अर्थात् अध्यात्म साधनावाला जब अपनी देवरूप पवित्रता करके श्रेष्ठ देवबुद्धि को प्राप्त करता है तो वह कहता है—अब मेरा शिर श्रीयुक्त हो गया है। इसमें दिव्य चिन्तन हो रहे हैं। जिस शिर में दुरित विचार एवं दुरित कर्मों के चिन्तन का मन्थन होता रहता है, उसमें श्री का वास नहीं है। दुर्मति में श्री का वास नहीं होता। अतः शुभ चिन्तन करने वाला शिर एवं शिव संकल्पवान् मन जब इसका संचालन करेगा, तभी व्यक्ति श्रीसम्पन्न कहला सकेगा। सर्वप्रथम इसी के श्रीसम्पन्न होने की आवश्यकता है, जिससे शरीर के अंग-प्रत्यंग सभी में अपनी-अपनी का वास हो सके।

उस अवस्था में 'यशोमुखम्' मुख यशस्वी एवं उज्जवल होगा। शिर में श्रेष्ठ देवबुद्धि जब तक न होगी, तब तक अपने मुख पर यश नहीं होगा, न अन्य जनों के मुख पर हमारे यश की वार्ता होगी। जो व्यक्ति मुख की पवित्रता के लिए आहार-विहार की पवित्रता एवं उसपर संयम नहीं कर सकता और वाणी की पवित्रता एवं उसपर संयम करके उसको मधुर, प्रियभाषिणी, हितकारिणी नहीं बना सकता, उसके मुख का यश नहीं हो सकता। अतः अध्यात्म साधना के लिए मुख को यशस्वी बनाना होगा।

मुख का यशस्वीपन वाणी से सम्पन्न होता है, परन्तु यदि उसके साथ उस पर दाढ़ी-मूंछ आदि भी हों, तो उसके द्वारा उसकी साधना की परिपक्वता का भी सहज आभास हो जाता है। जो व्यक्ति जितने अधिक दीर्घ काल तक तप या अपनी साधना में जीवन व्यतीत करेगा, उसके कारण दाढ़ी-मूंछ भी उतनी ही अधिक बढ़ेंगे और उनकी परिपक्वता भी उससे प्रकट होगी। अतः 'त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि' मेरे केश व दाढ़ी-मूंछ कान्तिवान् हो, यह साधना अपनी उन्नति के लिए करनी पड़ती है।

प्राण शरीर का राजा है, उसे अमृत का पान कराना होगा। प्राण शरीर व इन्द्रियों का राजा होने से इन्द्र है। इन्द्रियाँ ही देव हैं।

यदि प्राणरूपी इन्द्र अपने इन्द्रियरूपी देवों के साथ अमृत का पान नहीं करेगा, तो प्राणरूपी इन्द्र को अजरत्व, निर्जरत्व, अमरत्व कहाँ से प्राप्त होगा। प्राण के जर्ज एवं शक्तिहीन होने से मर्त्यभाव प्रधान हो जायेगा। अतः प्राण जो शरीर का राजा है उसे बलवान् बनाना पड़ेगा। प्राण को बल, अमृत से, शुद्ध अध्यात्म प्राण से प्राप्त होता है, जिससे वह सदा जागृत रहता है। यह अमृततत्त्व प्राण को ब्रह्मचर्य एवं प्राणायामादि की आध्यात्मिक साधना से ही प्राप्त होता है। अतः 'राजा मे प्राणो अमृतं' यह वेद ने अपने में चरितार्थ करने का उपदेश दिया।

'सम्राट चक्षुः' सूर्य अथवा दिव्य चक्षु प्राप्त करना अपनी चक्षुओं को सम्राट् बनाना होता है। इस सृष्टि के सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद का दर्शन ही वास्तव में चाक्षुषत्व है। जिस प्रकार से राष्ट्र में सम्राट् की विविध दर्शनशक्ति राज्य को भली-भाँति देखती रहती है और जिस प्रकार से अखिल विश्व का सम्राट् अपनी दिव्य दृष्टि से सर्वत्र देख रहा है, उससे कुछ अचाक्षुष्य नहीं रहता, उसी प्रकार अध्यात्मिक साधना करने वाले को अपनी विविध प्रकार की दर्शन शक्ति, सम्राट् शक्ति जागृत करके साधना करनी चाहिए। जिसके नेत्र सम्राट् के समान तेजस्वी होंगे, उसके सामने कौन दुष्ट प्राणी या दुष्ट भाव अंकुरित हो सकेगा। इस प्रकार 'सम्राट्चक्षुः' सूर्य दर्शन की साधना अध्यात्म पक्ष में करनी होगी।

जब मुख, प्राण, नेत्र सभी देव श्रेष्ठ होंगे, तो 'विराट् श्रोत्रम्' की भी साधना में श्रोत्र कैसे पीछे रहेंगे। उन्हें भी इन सबसे जो प्रेरणा मिलेगी, वह भी दिव्य ही होगी। विराट् परमात्मा का वह विराट् शब्द, जो उस विराट् प्रभु के साथ सर्वत्र व्याप्त है, गूढ़ है, अव्यक्त है, अनहत रूप से सर्वत्र विद्यमान एवं प्रकट हो रहा है। वह उसी अवस्था में सुनाई पड़ सकता है, जब हम श्रोत्रों को विराट् के शब्द में लगा देंगे। इसके लिए मध्यमा वाक् से ऊपर पश्यन्ती वाक् में प्रवेश करना चाहिए। उसकी ध्वनि को सुनने के लिए बाह्य शब्दों से वृत्तियों को हटाकर अन्तर्मुख होकर ध्यान में बैठना होगा। विराट्

के साथ श्रवण का सान्निध्य करने से 'विराट् श्रोत्रम्' की साधना सिद्ध होगी।

ऐसा साधक कह उठेगा, आओ विश्व के प्राणियो, ऐ मनुष्यो, पशुओ और पक्षियो ! मेरी जिह्वा कल्याणकारी हो गई है। अभी तक तुम लोग जिह्वा के वश में इधर-उधर भटकते फिरते हो, तुम मेरे समान 'जिह्वा मे भद्रम्' की साधना करो। यह जिह्वा संसार के विविध रसों में लिप्त होकर उनके वशीभूत होकर, अभद्र बनकर शरीर को अभद्र बना रही है। इस पर संयम करने से वह भद्र—कल्याणकारी—बन जायेगी। यह तुम्हारे वश होकर तुम्हें कहीं नहीं भटकावेगी और जो महान् अमृतरस शिरस्थ पद्मों में से निर्झरित होता रहता है, उसके रसास्वादन में लगी रहेगी, जिसे योगी लोग खेचरी मुद्रा द्वारा प्राप्त करते हैं। एक बार जब रसना ने उस रस का आस्वादन कर लिया, तो फिर संसार के सब रस फीके पड़ जायेंगे। संसार के इन रसों से भी परे का वह दिव्य रस है, उसकी खोज करो और 'जिह्वा मे भद्रम्' को सार्थक करो।

जिसने इस प्रकार अपने अंग-प्रत्यंग एवं इन्द्रियों में दिव्य गुणों का आधान किया है, उसकी 'वाङ् महः' वाणी में वास्तव में महानता होती है। उसकी वाणी पूजनीय होती है। उसमें प्रभाव एवं शक्ति उत्पन्न हो जाती है। वाणी को पूजनीय बनाने के लिए उसकी यथार्थ रूप से साधना करनी चाहिए। परमात्मा की पूजनीय वेदवाणी की साधना से अधिक वाणी की और कौन-सी श्रेष्ठ साधना हो सकती है। वही वाणी सबसे महान् एवं पूजनीय है। उस वाणी के उच्चारण वास्तव में हमारी वाणी भी पूजनीय होगी और हमारा ज्ञान भी पवित्र होगा। हमारे संकल्प पवित्र बनेंगे। हमारे कर्म भो पवित्र बनेंगे।

इसीलिए मन्त्र में आगे मन तथा कर्मेन्द्रियों को भी श्रेष्ठ गुणयुक्त बनाने के लिये 'मनो मन्युः', 'स्वराड् भामः' कहा है। अर्थात् मेरा मन मन्यु से युक्त हो। मन्यु रहित मन में तेजस्विता नहीं। निस्तेज मन अपने कुसंस्कारों को नष्ट कर सकता। मन का अशुभ संकल्पों को छोड़ने के लिये जो क्रोध है, वह मन्यु है। वही जब शरीर संयुक्त

होकर प्रकट हो जाता है, तो भामः है। यह जो भामः क्रोध है, वह स्वराड् अपने से ही प्रकाशित होने वाला हो, किसी अन्य का हनन करने वाला न हो। अर्थात् अपने में ही जो कुविचार, दुर्भावना एवं अपने ही दूरित कर्म हैं, उन्हें दूर करने के लिये यह प्रकाशित हो।

अब शिर, ज्ञानेन्द्रियाँ, वाणी एवं मन इस प्रकार से श्रेष्ठ गुण-युक्त हो जायेंगे, तो 'मोदाः प्रमोदा अंगुलीरंगांसि' मेरे अंग-प्रत्यंग में, मेरी अंगुलियों में हर्ष और आनन्द विराजने लगता है। उससे कलाओं का विकास होने लगता है और साधक अनुभव करने लगता है कि 'मित्रं मे सहः' साहस मित्र हो गया है। मुझमें अत्यन्त साहस है, बल है। साहस के मित्र बन जाने से प्रत्येक कार्य में सफलता ही प्राप्त होती है। जो निरुत्साही होते हैं, वे कोई भी कार्य प्रारंभ नहीं कर पाते।

साहस के मित्र बन जाने पर ही साधक कह सकता है 'बाहू में बलमिद्रियं हस्तो मे कर्म वीर्यम्'। मेरे बाहुओं में निःसन्देह बल है, इन्द्रियों में ऐश्वर्य भरा हुआ है और हाथों में अपूर्व कर्म एवं पराक्रम स्फूर्ति हो गई है। अब साहस के साथ साधक कह सकता है। 'आत्मा क्षत्रमुरो मम' अर्थात् मेरे हृदय में दृढ़ आत्मबल जागृत हो गया है और सबके रक्षण में मेरी भुजाओं का बल, हाथों का कर्म-कौशल और हृदय का प्रेम समर्पित हो गया है।

मेरी पीठ अब राष्ट्र बन गई है। उस पर मैं देश, जाति एवं संसार के कल्याण एवं उन्नति का भार वहन करूंगा। मेरा उदर, कंधे, ग्रीवा, कटिप्रदेश, जंघा, घुटने ये सब मेरी प्रजायें हैं। मेरे वश में हैं। मेरे नियंत्रण में हैं और मेरे सहायक हैं। मेरे चित्त ने नाभि केन्द्र के चक्र मणिपुर को जागृत कर लिया है। मेरे ज्ञान ध्यान ने मूलाधार चक्र को भी जागृत कर लिया है और आनंददायक स्वाधिष्ठान चक्र को भी जागृत कर लिया है। जांघों और पैरों से आसन धर्म को सिद्ध कर लिया है तथा शरीररूपी प्रजा में प्राणरूपी राजा की प्रतिष्ठा कर ली है।

इस प्रकार शरीर के अंगों में गुणाधान आध्यात्मिक साधना में

अनेक विधियों से करना होता है।

वर्त्तमान जीवन में आध्यात्मिकता की आवश्यकता

वर्त्तमान समय के जनजीवन में यदि आध्यात्मिक साधना का प्रवेश हो जायेगा तो जीवन महान् आदर्श बन सकता है और जीवन में सुख एवं शान्ति भी प्राप्त हो सकती है। आज सुख की खोज में मान भटक रहा है। वह शरीर एवं इन्द्रियों को विषय भोग की भट्टी में झोंकने के साधनों को संग्रह करके अपने चारों ओर रोग, शोक, मोह, द्वेष, क्रोध के दावानलों को भड़काकर सुख और शान्ति के मार्ग को खोजना चाहता है। वह कैसे प्राप्त हो ?

शान्ति का निवास बड़े-बड़े प्रासादों में नहीं है। उसे दुनिया के बड़े-से-बड़े बाजार में से खरीदा नहीं जा सकता। उसे हम बड़े-बड़े उद्यानों में नहीं पा सकते। बड़े-बड़े कीमती वस्त्रों के धारण से वह प्राप्त नहीं होती। विविध प्रकार के भोजन एवं पार्टियों में उसका वास नहीं है।

सच्ची शान्ति कहीं प्राप्त होगी, तो वह अपने में ही प्राप्त होगी। अपने मन की अशान्त वृत्तियों को एक बार चारों ओर से हटाकर अपने में लगा दो। शान्ति के द्वार पर, सुख की देहली पर उस समय तुम अपने को पाओगे और आनन्द की झलक तुम्हें प्राप्त होगी।

मन की साधना से शान्ति

उस समय अनुभव होगा कि यह वह मन ही था, जो अतृप्त होकर, अशान्त होकर, चंचल होकर बार-बार तुम्हें नचा रहा था। तुम्हें उद्विग्न कर रहा था, तुम्हें अपने राग से रंजित कर राग द्वेष की भट्टी में झोंक रहा था। तुम उसके पीछे बिना विचारे दौड़ रहे थे। उसके वश में होकर संसार के मंच पर विनाशक नृत्य कर रहे थे। ऐसी भटकती हुई मानव जाति को वेद अपना दिव्य सन्देश दे रहा है :—

सं ते मनो मनसा, संप्राणः प्राणेन गच्छताम् ।

(यजुः अ० ६ । मं० १८)

अपना मन विश्व के विराट् मन से संयुक्त कर दो। वह दिव्य मन है। उसमें दिव्य भावनायें बह रही हैं। जब उस मन से तुम अपना मन संयुक्त कर दोगे, तो उस दिव्य मन के संकल्प, ज्ञानादि का आपमें भी प्रकाश आने लगेगा। उस वेगवान् प्रवाह से आपके मन के अन्दर जो निकृष्ट संकल्प हैं, वे नष्ट हो जायेंगे। जैसे नदी की वेगवती धाराओं के प्रवाह से, नदी किनारे के छोटे-छोटे गड्ढों के रुके हुए, सड़े हुए, मलिन जल बह जाते हैं और उनमें नवीन जल का प्रवेश हो जाता है, उसी प्रकार आपके मन भी उस दिव्य मन के संकल्प के वेगवान् प्रवाह से दिव्य हो जायेंगे। अतः सुख और शान्ति प्राप्त करने के लिये अपने मन को दिव्य मन के साथ लगाओ।

मन के साथ प्राण की साधना

अपने प्राणों को भी विश्व के प्राण के साथ संयुक्त करो। यदि हमारा आन्तरिक प्राण बाह्य जगत् के प्राण से संपर्क नहीं करेगा, तो हमारे प्राण विपयुक्त होकर हमारे जीवन को नष्ट कर देंगे। इसी क्रिया से हमारा जीवन स्वाभाविक रूप से चलता है। परन्तु यदि हम प्राण की इस विद्या में कुशल होकर इसका अभ्यास प्राणायामादि के द्वारा करेंगे, तो सामान्य स्थिति से बहुत अधिक रूप में हमारा प्राण विश्व के प्राण से संयुक्त होकर विविध प्रकार की शक्तियों की एवं जीवन की वृद्धि करने वाला हो जायेगा।

दीर्घ जीवन प्राणों पर ही आश्रित है। स्वास्थ्य सम्पादन प्राणों पर ही आश्रित है। जीवन का सुख प्राणों पर ही आधारित है। प्राण ही जीवन है। प्राण और मन दोनों ही मिलकर इस कायारूपी अपूर्व नगरी को स्वर्ग एवं नरक बना रहे हैं। इन्हीं से यह देह देव बन जाता है और इन्हीं से असुर और राक्षस भी बन जाता है।

मन को संस्कारवान् बनाने की आवश्यकता

आज मानव जाति का मन और प्राण उसके वश में नहीं है। वह दूसरों के संकल्पों एवं जीवन पर अपना आधिपत्य चाहता है।

परन्तु उसका स्वयं के मन एवं प्राण पर आधिपत्य नहीं। वह इसी कारण अपने को और परमात्मा को भी भुला बैठा है। जब उसके मन और प्राण अपने वश में होंगे, तभी वह आत्मोन्नति एवं परमात्मा की ओर बढ़ सकेगा, अन्यथा नहीं।

मन ही वह प्रथम केन्द्र है, जिस पर हमें सबसे प्रथम संस्कार डालना है। यहीं पर प्रथम चयन करना है, जिससे मन उस चयन से आवेष्टित होकर उसमें शक्ति प्राप्त करता हुआ अपने वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त कर सुख और शान्ति के श्रेष्ठ मार्ग की ओर अग्रसर हो सके।

मन की साधना का मन्त्र एवं लाभ

मानव की दुर्बलता को देखकर वेद ने एक मन्त्रवाक्य 'मे मनः शिव संकल्पमस्तु' यह हमें दिया है। इस मन्त्र का जप करो। इसके अर्थ पर ध्यान दो। इस पर आचरण करो। इस संसार में यह मन्त्र तुम्हें वरदायक सिद्ध होगा। अपने मन को कल्याणप्रद, शुभ, श्रेष्ठ, उच्च, उदार एवं उत्तम संकल्पों का अजस्र स्रोत बनाओ। तुम्हारे मन की शिवसंकल्पधारा से संसार की रचना सर्वत्र कल्याण, आनन्द, मंगल, शुभ ही की स्थापना होगी तथा सर्वत्र इसी का साम्राज्य दृष्टिगोचर होगा। यही सन्मार्ग की कुँजी है। यही मानव जाति के कल्याण का राजपथ है।

मन की साधना से ही मनुष्य उन्नत होता है और उससे वह आत्म विज्ञान को प्राप्त करता है। अतः अध्यात्म विद्या में मन का अत्यन्त महत्त्व है। वेद ने इसकी शक्ति का परिचय देने एवं इसको नियन्त्रित करने के लिए सारथी की उपमा के साथ निम्न शब्दों में इसका वर्णन किया है :—

'सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव'

(यजुः अ० ३४। मं० ६)

जिस प्रकार से उत्तम सारथि अपने रथ के घोड़ों को चलाता है एवं लगाम से घोड़ों का संचालन होता है, तद्वत् यह मन मनुष्य देह को इतस्ततः प्रवृत्तियों में संचालित करता है। अतः मनको

सुनियन्त्रित एवं वश में रखकर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर करना परमावश्यक है।

एकाग्रता से मन की साधना

मन की साधना के लिये वेद कहता है :—

'युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरत्॥

(यजु: अ० ११। मं० १)

अर्थात् योगैश्वर्य का सम्पादक प्रथम मन को एकाग्र करता हुआ बुद्धीन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को तत्त्वज्ञान के लिए आत्मज्योति का साक्षात्कार करके पार्थिव पदार्थों से ऊपर उठता है।

इस मन्त्र में 'युञ्जानः प्रथमं मनः' इन शब्दों द्वारा मन को एकाग्र करने का उपदेश है, जो कि योग का आधारभूत प्रथम लक्षण एवं प्रथम कार्य है। मन को एकाग्र करना अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है। इसी को महर्षि पतंजलि ने योग के द्वितीय सूत्र में 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' इन शब्दों में लिखा है।

मन की एकाग्रता का लाभ

इस प्रकार की साधना से क्या होता है, इसका उत्तर इसी मन्त्र में अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य' जो आत्मज्योति या परमात्मज्योति है, उसका निश्चयात्मक ज्ञान होकर उसमें अवस्थित होते हैं। यही वर्णन महर्षि पतंजलि योग के तीसरे सूत्र 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' में लिखते हैं।

वृत्तियों के निरोध की आवश्यकता

मन की इस साधना के लिए—मन को परमात्मा में लगाने के लिये—वेद इस मन्त्र में कह रहा है 'पृथिव्या अध्याभरत्' अपने मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को पार्थिव पदार्थों अर्थात् सांसारिक दृश्य एवं वासनाओं से ऊपर उठाओ। ये बाह्य वृत्तियां ही मन को विचलित करती हैं। अतः 'सविता'—ऐश्वर्य की कामना वाले व्यक्ति को

'तत्त्वाय' परमतत्त्व के ज्ञान, दर्शन या प्राप्ति के लिए 'धियः' चित्त की वृत्तियों का निरोध करना चाहिये। यदि इन वृत्तियों का निरोध करके आत्मा या परमात्मा का दर्शन नहीं करेंगे, तो मन्त्र में पठित 'धियः' शब्द अपनी बहुमुखी वृत्तियों के कारण उन वृत्तियों से हमें चलायमान करता रहेगा। इसी स्थिति को योग-दर्शन के चतुर्थ सूत्र में 'वृत्तिसारूप्यमितरत्र' बताया है।

ये बाह्य वृत्तियाँ ही मन को इतस्ततः भटकाती रहती हैं। मन अशान्त बना रहता है। यदि उस समय हमें अपना लक्ष्य ध्यान में आ जाये और मन उस ओर न लगे तो हमें स्वयं प्रश्न करना चाहिये—

'कथं न रमते मनः' (अथर्व० काण्ड २०। सूक्त ७। मं० ३७)

अर्थात् मेरा मन परमात्मा में क्यों नहीं लगता है ? इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार करने पर हमें ज्ञात हो जायेगा कि अमुक वृत्तियों के कारण मन भटक रहा है। उसके ज्ञात होने पर उन वृत्तियों से अपने मन को हटाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार मन एवं उसकी वृत्तियों पर नियन्त्रण हो जाता है।

वृत्ति निरोध के लिए प्राणायाम की आवश्यकता

मन को वृत्तियों से हटाने एवं वश में करने के लिए वेद ने प्राणायाम का अभ्यास करने का उपदेश दिया है।

'प्राणाय स्वाहानापानाय स्वाहा—व्यानाय स्वाहा'

(यजुः अ० २२। मं० २३)

शरीर में जो प्राण-अपान-व्यान-उदानादि विविध प्रकार के प्राण हैं, उन्हें यथावत् क्रिया से संगत करना चाहिए। इसी बात का ज्ञान कराने के लिए यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ही 'वायवस्थ' प्राणन्तःकरणेन्द्रिय अपने शरीर में हैं, उनको श्रेष्ठतम कर्म-जीवन यज्ञ में अर्पित करने के लिए उपदेश दिया है। यजुर्वेद के अ० १८, मं० २९ में प्राणशक्ति को शरीरस्थ यज्ञ में अर्पित करने के लिए अर्थात् प्राणायाम का विधिवत् अभ्यास करने के लिए—"प्राणो यज्ञेन कल्पताम्" कहा है।

प्राण और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राण के वश में होने पर

मन वश में हो जाता है और मन के निरोध में सहायता होती है, जिससे मन को यथेच्छ स्थान या विचार में नियोजित किया जा सकता है।

आन्तरिक ज्योति की आवश्यकता

जिस प्रकार से हमें बाह्य जगत् के व्यवहार के लिए प्रकाश की आवश्यकता रहती है और उसके बिना हमारा कुछ भी कार्य नहीं चलता, इसी प्रकार आन्तरिक जगत् के लिए भी ज्योति की आवश्यकता है। ज्योति के बिना कुछ हो नहीं सकता, अतः आन्तरिक क्षेत्र में ज्योति की प्राप्ति आवश्यक है।

दिव्य मन अर्थात् बुद्धि के लिए वेद ने 'ज्योतिषां ज्योतिः' (यजुः अ० ३४ मं० १) कहा है। परन्तु इसका यह स्वरूप भी प्राणायाम, ध्यानादि के अभ्यास से ही प्राप्त होता है। हमारी यह ज्योति ठीक उसी प्रकार की है, जैसे सूर्य के सामने दीपक या सूर्य के सम्मुख तारागणों का प्रकाश है। अतः मन की ज्योति को अपने से महान् ज्योति की प्राप्ति का प्रयत्न करना पड़ता है। विश्वज्योति का दर्शन या उसकी प्राप्ति के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। इसीलिये वेद ने प्रथम मन्त्र में उस अग्नि की खोज का उपदेश दिया। यह खोज मन से ही होगी, अतः वेद दूसरे मन्त्र में उपदेश देता है :—

आत्म ज्योति को धारण करें

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या॥

(यजुः अ० ११। मं० २)

अर्थात् उस परम देव सविता के संसार में प्रवर्त्तमान उसकी आज्ञा में या उस योगी विद्वान् को अध्यक्षता में हम एकाग्र मन से सुख लाभ के लिये अपनी सामर्थ्य से आत्मज्योति को धारण करें।

योग का अभ्यास मनुष्यों को करना चाहिए। परमात्मा की सृष्टि में यह प्रथम कार्य है और आवश्यक है। योग का उद्देश्य ही परमात्मा की प्राप्ति है। अतः योग शब्द इसी अर्थ में रूढ़ भी हो गया। लाक्षणिक अर्थों में उसका 'तात्पर्य योगः कर्मसु कौशलम' भी

किया जाता है। किन्हीं दो या अधिक का सम्मिलन अथवा एकत्रीकरण भी योग कहाता है।

योग से परमानन्द प्राप्ति

आज का भटका हुआ संसार योग से विमुख है। वेद उसे इस मार्ग का दर्शन कराता है। परमात्मा की जो वेद वाणी है, उसी की आज्ञा में प्रवर्त्तमान होकर तथा उसके अनुसार बताये मार्ग द्वारा जो योग में युक्त हैं, उनके संरक्षण या मार्गदर्शन में मोक्षपद प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। अर्थात् योग द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है और उसके लिए 'युक्तेन मनस वय' हम सबको एकाग्र मन से उसमें संलग्न होना चाहिए, ऐसा वेद ने उपदेश किया।

मन को उपासना में लगायें

उस मन को कहाँ लगायें, इसके लिए वेद ने मन्त्र में बताया 'देवस्य सवितुः सवे' सकल जगत् के उत्पादक एवं प्रकाशक परमात्मा की आज्ञा में लगाना चाहिए। परमात्मा की आज्ञा क्या है, इसका उत्तर वेद से ही प्राप्त होता है 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' (यजुः अ० १३। मं० १४) हम उस सुखस्वरूप परमात्मा की सकल उत्तम सामर्थ्य से उपासना करें। उसकी उपासना से हम में बल, बुद्धि, तेज आदि सामर्थ्यरूपी धन प्राप्त होते हैं और ज्ञान तथा परमानंद रूपी महाधन भी प्राप्त होते हैं। इसी को वेद ने 'स्वर्ग्याय'—स्वर्ग, सुख विशेष, वह सुख आनंद विशेष जो लौकिक सुखों से परे, लोकोत्तर आनंद है, उसके लिये यह उपासना है, इसका मन्त्र में संकेत किया है।

उपासना के अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं

परन्तु मन में प्रश्न होता है कि हम इस मार्ग को स्वीकार न करके, उस महान् ज्योति परमात्मा को प्राप्त न करके क्या अन्य प्रकार से मोक्ष को—परमानंद पद को—प्राप्त हो सकते हैं? इस

प्रश्न को समाधान वेद ने निम्न शब्दों में किया है :—

'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति' (यजुः अ० ३१ । मं० १८) अर्थात् उस परमपुरुष को जो ज्योति का महान् पुंज है, उसी को जान लेने पर जीव मृत्यु को तर जाते हैं और मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं। मन्त्र में 'तमेव' पद है, जिसका तात्पर्य उस एक का ही है और अन्य का निषेध है। इससे स्पष्ट है कि उसी परमात्मा को प्राप्त करने से मोक्षपद की प्राप्ति होती है, अन्य से नहीं।

वही परमात्मा हम जीवों के लिये उपास्य है, ज्ञेय है, प्राप्तव्य है। वही हमारे जीवन का परम लक्ष्य है। उसी की साधना करने से लक्ष्यपूर्ति होगी। इसी भाव को और स्पष्ट करने के लिए वेद ने कहा :

'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (यजुः अ० ३१ । मं० १८)

अर्थात् परमात्मा प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य दूसरा मार्ग मोक्ष प्राप्ति का नहीं है। वही परमात्मा आनंद का परम धाम है और उसी को प्राप्त करने से उस मोक्षपद की प्राप्ति होती है। अतः हमारा लक्ष्य उस परमात्मा को जानने का तथा उसे प्राप्त करने का होना चाहिए। उसी के लिये योग का उपदेश वेद ने दिया।

परमात्मा को भूलने से मानव भटक रहा है

आज का मानव परमात्मा को भूलकर ही नहीं, अपितु परमात्मा के अस्तित्व को भी अमान्य करके अपने अस्तित्व को ही प्रधानता दे रहा है। जब उसकी दृष्टि में परमात्मा कोई तत्त्व ही नहीं, तो उस की दृष्टि में यह दृश्यमान संसार ही सब कुछ है। उसके लिए वह स्वयं है और संसार है। वह उसका अनेक प्रकार से भोग करने में लगा हुआ है। संसार के भोग उसे बार-बार थका देते हैं। आशा और निराशा, इच्छा और तृप्ति से संयोग-वियोगात्मक रूप में मन इधर-उधर दौड़ता रहता है और उसे वास्तविक शान्ति और वास्तविक आनंद की प्राप्ति हो नहीं पाती। वेद के मार्ग पर आये बिना 'देवस्य सवितुः सर्वे' के बिना उसको चिर शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

वेद योग का प्रतिपादन करते हुए पुनः उपदेश देता है :—

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्य्यतो धिया दिव।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्॥

(यजु: अ० ११। मं० ३)

अर्थात् सुख एवं आत्मप्रकाशोन्मुख इन्द्रियों को प्रजा तथा कर्म से संयुक्त करके, प्रेरक बन, ऐश्वर्यवान् योगी महान् आत्मज्योति सम्पादिका इन्द्रियों को प्रेरित करें।

प्रत्याहार

इस मन्त्र में आत्मप्रकाशोन्मुख इन्द्रियों के प्रज्ञा तथा कर्म से संयुक्त करने के प्रयत्न की ओर बढ़ने का संकेत किया है। इन्द्रियाँ अब आत्मप्रकाशोन्मुख हो जाती हैं, बाह्य विषयों की ओर से वे वैराग्य स्थिति प्राप्त कर लेती हैं और उधर से प्रत्यावर्तित होकर ही अन्तर्मुख होने की स्थिति में होती हैं। योगदर्शन में इस स्थिति को प्रत्याहार कहा है। प्रत्याहार के बिना योग में प्रवेश नहीं होता।

जीवन को योग यज्ञमय बनावें

इन्द्रियों को आत्मप्रकाशोन्मुख करने के लिए निम्न मन्त्र में योग यज्ञ का वर्णन प्राप्त होता है :—

'आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां, चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳश्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां, पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां, यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।
प्रजापतेः प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम॥

(यजु: अ० ९। मं० २१)

आयु को योग यज्ञ से सम्पन्न करने में प्राणों का महत्त्व

हम अपनी आयु को योग यज्ञ से समर्थ बनायें। योग यज्ञ से समर्थ बनाने के लिए प्राण को योग यज्ञमय बनाना होगा। प्राण को योग यज्ञमय बनाने के लिए प्राणों को होता बनाना होगा। प्राण अग्नि है। अग्नि होने से पुरोहित है। पुरोहित होने से सर्वार्थसाधक भी है। गतिशील है। तेजस्वी है। दूतवत् भी है। शरीरयज्ञ का

वह आराध्य देव है। इस शरीर के अन्दर विविध प्रकार की ऋतुओं का निर्माता है। उसी से इस जीवन में वसन्त की बहार आती है। रूप-लावण्य, दिव्यता आदि सब इसी की महिमा से अपना हास्य प्रकट करता है। इसी प्राण की महिमा से इस देह में प्रचण्ड गरमी, उष्णता, ताप, तेज, ओज, मन्यु, भानः, स्वराड्, दीप्ति, ज्योतिः का आविर्भाव होता है और इसमें विराजता है। इसी प्राण के ही कारण इस शरीर में सप्त धातुओं की वर्षा होती रहती है और इसका जीवन वृद्धि को प्राप्त होता है। इस प्रकार यह प्राण ही शरीर में विविध ऋतुचक्र को चला रहा है। जब यह नहीं रहता तो शरीर का यह सब ऋतुचक्र समाप्त हो जाता है।

यही प्राण इस शरीर में होता बनकर बैठा है और जब तक यह होता बनकर बैठा है, यह शरीर रत्नों का कोष है। प्राण के निकलते ही यह शरीर रत्नों का कोश नहीं रहता। केवल मृत्तिका का रूप रह जाता है और इतना गुण रहित रह जाता है कि भस्म कर दिया जाता है। अतः वास्तव में यह शरीर प्राणों से ही गुणवान्, रत्नवान् बना हुआ है।

यही प्राण होता है। होता के गुणों को देख एवं समझकर इस प्राण को यज्ञ से संयुक्त करें। होता का अर्थ है हव्य पदार्थों का दाता और गृहीता। दान और ग्रहण ये अग्नि के गुण हैं। अग्नि में दी हुई आहुति को अग्नि अपने में ग्रहण कर लेती है। पुनः उसका दान करके सर्वत्र प्रसारित कर देती है। इसी प्रकार हम भी प्राण का ग्रहण और संकल्प प्रयत्नपूर्वक करें। अपने संकल्प और प्रयत्न-पूर्वक प्राणों को लेने और छोड़ने के कार्य की प्राणायाम संज्ञा है।

प्राणों के लेने और छोड़ने की विधि भेद से तथा उसके साथ काल का विविध प्रकार से जो प्रयोग है उसी से प्राणायाम के अनेक भेद हो जाते हैं। प्राण के इन्हीं विविध प्रकार के अभ्यासों से ही 'प्राणो यज्ञेन कल्पताम्' सार्थक होता है।

नेत्रों से योग यज्ञ

इस प्रकार प्राणों के यथावत् अभ्यास से अर्थात् उसमें होतृत्व

जागृत् करने से 'चक्षुर्यज्ञेन कल्पताम्' नेत्र यज्ञ से सम्पन्न हो जाते हैं। अर्थात् दोनों नेत्र भ्रूमध्य में अपनी दर्शन शक्ति से अपने दिव्य कार्य अन्तर्ज्योति का दर्शन करते हैं। तब 'प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः' योग दर्शन के सूत्र के अनुसार की स्थिति प्राप्त होती है।

श्रोत्रों से योग यज्ञ

ज्योति के दर्शन के साथ पुनः 'श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्' श्रोत्रों को भी योग यज्ञ में लगाना चाहिए, जिससे आन्तरिक शब्द, अनहत, दिव्य शब्दों का श्रवण होने लगता है। इसी प्रकार शरीर की प्रत्येक इन्द्रिय को योग यज्ञ के साथ संयुक्त करना चाहिए। इस शरीर रूपी यज्ञशाला में इस प्रकार सम्पादन करते हुए।

पृष्ठवंश से योग यज्ञ

'पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम्' स्थिति को भी प्राप्त करना चाहिए। इन्द्रियों में संयम करके पृष्ठवंश में जो नाड़ियों के केन्द्र हैं, जिनका सम्बन्ध मूलाधार चक्र के सहस्रार चक्र तक है, वही नाड़ी जाल ही, जो योगयज्ञ का वास्तव में मेरुदण्ड है, उसके अन्दर प्राणों को प्रवेश कराता है। यही सुमेरु है। सुमेरु के एक भाग पर सूर्य है और दूसरी ओर चन्द्र है। इस सुमेरु की प्रदक्षिणा योगी के प्राणरूपी सूर्य और चन्द्र करते हैं। इन्हीं सूर्य और चन्द्र से योगी के दिन एवं रात्रि का निर्माण होता है। उन्हीं अहोरात्रों से पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं संवत्सर चक्र अध्यात्म पक्ष के बनते हैं। इस प्रकार योगी के यज्ञों से उसका जीवन यज्ञ बनता है।

योगयज्ञ से प्रजापति के साम्राज्य में प्रवेश

जब सर्वात्मना योगी इस प्रकार योगयज्ञ में अपने प्राण, मन व इन्द्रियों की आहुति दे देता है, वह 'प्रजापतेः प्रजा अभूम' प्रजापति परमात्मा के साम्राज्य में उसकी प्रजा बनकर प्रवेश कर जाता है और अपने स्वामी के दर्शन करने का अधिकारी हो जाता है। उस

स्वामी के साम्राज्य में उसकी प्रजा आसुरी नहीं होती। योगी के अन्दर से सब आसुरी भावों के नष्ट होने एवं दैवी भावों के जाग्रत् होने से सब इन्द्रियाँ देवत्व को प्राप्त हो कर 'यज्ञस्व देवं' के भाव को प्रकट करती हैं और देवरूप होकर सुख एवं ज्योति को प्राप्त करती हैं, जिसे मन्त्र में 'स्वर्देवा अगन्म' कहा है।

इस स्थिति से जब योगी और आगे बढ़ता है, 'अमृता अभूम' यह कहता है। हम अमृत को—मोक्ष को—प्राप्त हों, यही वास्तव में आनन्द की पराकाष्ठा है। इससे आगे कुछ प्राप्तव्य नहीं रहता। जो प्राप्त करना है, वह यहीं प्राप्त होता है।

धारणा

पूर्व वर्णित यजुर्वेद के एकादश अध्याय के तृतीय मन्त्र में प्रत्याहार का उपदेश प्राप्त हो जाने के बाद चतुर्थ मन्त्र में धारणा का निम्न प्रकार उपदेश प्राप्त हो रहा है:—

युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रादधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥

(यजु० अ० ११। मं० ४)

इस मन्त्र में योग के साधक के लिए होत्रा और विप्राः ये विशेषण दिये हैं। होत्रा का इस योग विद्या में तात्पर्य है, जो प्राणों को छोड़ने एवं ग्रहण करने वाले हैं अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास करने वाले हैं। साथ में विप्राः अर्थात् बुद्धि की साधना में जो लगे हैं। इन दोनों प्रकार के विशेषणों से युक्त साधक को चाहिए कि वह योगसाधन के लिए 'मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः' सब जगत् को उत्पन्न और सबके प्रकाशक जगदीश्वर की सब प्रकार की स्तुति है, उस तत्त्वज्ञान के विषय में 'युञ्जते' मन उत युञ्जते धियः अपने मन और बुद्धियों को युक्त करते हैं। मन और बुद्धियों को परमात्मा के तत्त्वज्ञान में लगाने की क्रिया योग की परिभाषा में धारणा कही जाती है। 'देशबन्धश्चित्तस्य' धारणा (योगदर्शन, विभूतिपाद सूत्र १) सूत्र में चित्त को देश विशेष में बाँधने को धारणा बताया है। इस वेद मन्त्र में मन और बुद्धियों को परमात्मा के तत्त्वज्ञान में लगाने का

आदेश है। अतः यह धारणा की साधना का उपदेश है।

ईश्वर प्राणिधान

परमात्मा के इस तत्त्वज्ञान में, उसकी महती परिष्टुति में, उसके गुणों का चिंतन योगदर्शन की परिभाषा में 'ईश्वर प्राणिधानाद्वा' में, (योगदर्शन समाधिपाद सू० २३) की स्थिति है। इसी स्थिति में और अधिक प्रवेश करने लिए वेद कहता है :—

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥
(यजु० अ० ११। मं० ५)

अर्थात्-'युजे वां ब्रह्म, मन और बुद्धि तुम दोनों को ब्रह्म में लगाता हूँ। जो ब्रह्म 'पूर्वयं' अर्थात् पूर्व योगियों ने प्रत्यक्ष किया है, उसे नमोभिः अर्थात् नमन से, सत्कारों से अपने आत्मा में युक्त करना चाहिए। उसके प्रति अपने हृदय में श्रद्धा जागृत करनी चाहिए। यह नमोभिः पद परमात्मा के विविध गुणों का स्मरण और उसके श्रद्धायुक्त नमस्कार की भावना का द्योतक है।

जप

परमात्मा के गुणों का बार-बार स्मरण ही जप कहलाता है। परमात्मा के नाम का बार-बार स्मरण करना चाहिए। नाम स्मरण के लिए वेद ने उपदेश किया है :

ओ३म् क्रतो स्मर। (यजु० अ० ४०। मं० १५)

अर्थात् हे कर्मशील जीव ! तू इस जीवन को प्राप्त कर उस प्रभु के मुख्य नाम ओ३म् का स्मरण कर।

बार-बार श्रद्धापूर्वक ओ३म् का जाप करने से 'ओम्प्रतिष्ठ' (यजु० अ० २। मं० १३) साधक के प्राण, मन, बुद्धि, हृदय तथा ध्यान में श्रद्धापूर्वक ईश्वर की प्रतिष्ठा-स्थिति होती है तभी साधक की साधना आगे बढ़ती है।

योगदर्शन में इसी रहस्य को खोलने के लिए 'तस्य वाचकः प्रणवः (समाधि पाद। सूत्र २७) कहा है। अर्थात् उस परमात्मा

का नाम ओ३म् है। इस नाम को स्मरण करने से परमात्मा के अन्य सब नामों का बोध हो जाता है और विविध नामों से जो स्तुति उस परमात्मा की की जाती है, उस सबकी पूर्णता इससे होती है। इसलिए, तज्जपस्तदर्थभावनम्' (योगदर्शन, समाधिपाद । सू० २८) उस परमात्मा के ओ३म् नाम का स्मरण नाम के अर्थ के चिन्तन के साथ करना चाहिए, यह उपदेश किया है, जिसे वेद ने मन और बुद्धि को लगाकर तथा नमोभिः पद से स्पष्ट किया है।

यम-नियमों के अनुष्ठान की आवश्यकता

ऐसा करने से साधक जिस स्थिति को प्राप्त होता है, उसके लिए मन्त्र में 'श्लोकः' पद है। अर्थात् सत्यवाणी से संयुक्त इस प्रकार का हो जाता है। साधक को स्वयं भी 'श्लोकः' सत्यवाणी तथा सत्य व्यवहार का अनुष्ठान करके अपनी साधना करनी चाहिए।

'श्लोकः' अर्थात् पुण्य, पवित्र, सत्य व्यवहार वाला बनने के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन यमों का तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान इन नियमों का पालन करना चाहिए। यदि साधक की साधना यम नियमपूर्वक नहीं है, तो मन और बुद्धि अशुद्ध, मलिन, असत्य, बाह्य वृत्तियों में रत रहेंगे और साधना सम्पन्न नहीं हो सकेगी।

योगांगों के अनुष्ठान की आवश्यकता

यह योगविद्या का यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि का मार्ग 'पश्येव सूरेः' अर्थात् विद्वान् को उत्तम गति के लिए प्राप्त होता है। यह उत्तम मार्ग की गति मोक्ष प्राप्त कराती है। इस मार्ग पर आरुढ़ होकर 'विश्वे पुत्राः अमृतस्य दिव्या निधामानि जातस्थुः' सब श्रेष्ठ पुत्र जो उस परम पिता परमात्मा की आज्ञा के अनुरूप व्रत कर अविनाशी ईश्वर के योग से सुख के प्रकाश में होने वाले स्थानों को प्राप्त होते हैं। उन साक्षात्कृतधर्मा योगियों से इस योग विद्या को सरहस्य 'शृण्वन्तु' सुनें, प्राप्त करें एवं अभ्यास करें अर्थात् योगी के संग योग विद्या प्राप्त करनी चाहिए।

बाह्य यज्ञ, योग यज्ञों की साधनार्थ है

इस प्रकार यजुर्वेद के ११वें अध्याय का यह पंचम मन्त्र यम, नियम, धारणा, ध्यान, समाधि, आदि योगांगों का प्रकाश करता है। यही योगयज्ञ वास्तव में यज्ञ है। बाह्य यज्ञों में इसी योगयज्ञ के मूल तत्त्वों की स्थापना करके अभ्यास कराया जाता है। दर्शेष्टि से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों से यद्यपि बाह्य कर्मकाण्ड किया जाता है, परन्तु वह सब आन्तरिक योगयज्ञ की साधना के लिए साधन रूप से ही है। जो कोई साधक इस रहस्य को न समझकर बाह्य कर्मकाण्ड में ही लगा रहता है, वह भस्म में आहुति देने के तुल्य क्रिया करता करता है। उसका यह कर्मकाण्ड वास्तव में निष्फल है। परमात्मा के शाश्वत यज्ञ की वृद्धि के साथ हमारा योगयज्ञ भी वृद्धि को प्राप्त होता रहे, इस निमित्त वेद ने कहा है।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यपज्ञंति भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥
(यजु० अ० ११। मं० ७)

अर्थात् हे (देव) सत्य विद्या से उपासना के योग्य शुद्ध ज्ञान देने वाले और (सविता) सब सिद्धियों को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर आप (न) हमारे (यज्ञम्) सर्वश्रेष्ठ सुखरूपी फल मोक्ष को प्राप्त करने वाले योग व्यवहार रूपी यज्ञ को (प्रसुव) अच्छी प्रकार हममें प्रकट कीजिए। उसकी नाना प्रकार से प्रेरणा देते रहिए। तथा (यज्ञपतिम्) इस योग्य यज्ञ के रक्षक, पूर्ण ज्ञाता ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानियों को भी (प्रमुख) उत्पन्न कीजिए। हे परमेश्वर! आप (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाले हैं, जिसके आश्रय से हम इस पर स्थिर होकर अपना सब योगयज्ञ करते हैं। यह इसीलिए देवयजनि है। इस पृथिवी के आश्रित ही हम इसमें वेदी बनाकर उसमें अग्नि स्थापित करते हैं और उस अग्नि में हवि डालकर उसे प्रदीप्त करके प्रकाश प्राप्त करते हैं। वह अग्नि ऊपर को बढ़ती है और प्रकाश का विस्तार करती है। इसी प्रकार हमारा यह शरीर भी भूमि क्षेत्र है। इस भूमि या क्षेत्र में मूलाधार चक्र पृथिवीवत् है। इस मूलाधार चक्र

को देवयजनि बनाने के लिए इसकी शुद्धि करनी होगी । इसमें प्राण एवं ध्यान के आघातों से वेदी बनानी होगी और उस वेदी में योगाग्नि की स्थापना करनी होगी । यही उन्नत दीप्तियुक्त होकर (केतेनः पुनातुः) हमारे ज्ञान को पवित्र करे । यह दीप्ति (केतपूः) है पवित्र ज्ञान वाली है । क्योंकि यह परमात्मा से सम्बन्धित है । अतः परमात्मा भी केतपूः है परमात्मा भी दिव्य शुद्ध गुण कर्म स्वभावों में सर्वोत्तम है तो यह योगाग्नि भी उसका अंश होने से योगी जनो में शुद्ध, गुण, कर्म, स्वभाव को उत्पन्न करती है । यह योगाग्नि (वाचस्पतिर्वाचनः स्वदतु) हमारे मानसिक जप एवं ध्यान द्वारा हमारी मानसिक वाणियों को अच्छी प्रकार ग्रहण करे, उनके रसयुक्त तथा पवित्र करे ।

योग यज्ञ से परमानन्द की प्राप्ति

इस योगाग्नि के माध्यम से हम जिस महनीय, सर्वतो महान् परमात्मा की अर्चना, साधना' उपासना कर रहे हैं, वह परमात्मा भी हमारे इस योग यज्ञ में हमारी धारणा, ध्यान, समाधि की साधना में अवलम्बरूी वाणी, ध्वनि या शब्द का अच्छी प्रकार ग्रहण करे, जिससे हमारी शब्द माध्यम से, वाचिक, या मानसिक वाणियों द्वारा या धारणा, ध्यान, समाधि की पश्यन्ती एवं परा वाणियां सुमधुर बनें और हम उसके माध्यम से परमानन्द का रसास्वादन करते रहें ।

आनन्द परमात्मा में है

योग के द्वारा अपना ज्ञान, सृष्टि का ज्ञान और परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होकर परमानन्द की प्राप्ति होती है । साधक का लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति है । आन्नद की प्राप्ति के लिए ज्ञान साधक है । ज्ञान की साधना के लिए विविध प्रयत्न आवश्यक हैं । पूर्ण आनन्द की प्राप्ति प्रकृति से नहीं हो सकती, क्योंकि प्रकृति में आनन्द गुण नहीं है । वेद कहता है :—

उतामृतत्वस्येशानः

(यजु० अ० ३१ । मं० २)

अर्थात् वह परमात्मा मोक्ष का भी अधिष्ठाता है, पूर्णानन्द रूप मोक्ष का वही स्वामी है और

त्रिमादस्यामृतं दिवि

(यजु० अ० ३९ । मं० ३)

उस आनन्द के स्वामी परिपूर्ण आनन्दमय परमात्मा का तीन भाग अमृतत्त्व मोक्ष सुखमय है। सृष्टि के तत्त्वों के माध्यम से जो कुछ भी क्षणिक सुख लाभ होता है, उसमें भी सुख का मूलकारण परमात्मा का ही है। क्योंकि सृष्टि का जितना भी क्षेत्र है, वह तो उसी पूर्ण पुरुष, परब्रह्म का एक चतुर्थ अंश मात्र है अर्थात् संसार के सम्पूर्ण भोगों में जितना भी आनन्द है, वह सब मिलकर मोक्ष के आनन्द से अति न्यून है। इस स्थिति का ज्ञान देने के लिए वेद ने कहा—

पादोऽस्याविश्वा भूतानि

(यजु० अ० ३१ । मं० ३)

यह जो समस्त दृश्य एवं अदृश्य जगत् है, वह तो एक चतुर्थांश मात्र है। अतः स्पष्ट है कि सृष्टि की परिधि में जो कुछ भी आनन्द जिस किसी भी माध्यम से अनुभूत होता है, वह उसी आनन्द-मूलक परमात्मा के कारण ही है।

योग से ऐश्वर्य प्राप्ति

परमात्मा ने इस मानव देह को सृष्टि के सार रूप तत्त्वों से बनाया है। अतः परमात्मा को चाहने वालों को इस शरीर को साधन बनाकर अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम एवं प्रयत्न से इस शरीर में साधना करनी चाहिए जैसा वेद ने कहा है :—

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यंच्छ मघवन्पाहि सोमम् ।
उरुष्य राय एषो यजस्व ।

(यजु० अ० ७ । मं० ४)

अर्थात् योगविद्या के जिज्ञासु जनों को चाहिए कि यम नियमादि योग के अंगों से चित्त आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को रोकें और अविद्यादि दोषों का निवारण करके संयम से ऋद्धि-सिद्धियों, धन

और इच्छा से सिद्धियों को सिद्ध करें।

मन्त्र में 'उपयामगृहीतोसि, अन्तर्यच्छ, सोमं पाहि, उरूष्य राय एषो यजस्व' आदि सब वाक्य योगैश्वर्ययुक्त विद्वान् के लिए या योग के जिज्ञासु के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। उस व्यक्ति को 'मघवा' कहा है। जिस प्रकार से इन्द्र ऐश्वर्य का स्वामी है, देवों का राजा है, उसी प्रकार से जो योगी 'उपयामगृहीतोऽसि' यमनियमादि से अपने को सुनियमित किए हुए है, अपनी देव रूपी इन्द्रियों को वश में करके उनका स्वामी बना हुआ है और अपने शरीर में उत्पन्न वीर्यरूपी सोम का ऊर्ध्वरेता बनकर शिरस्थ प्राण इन्द्रियों आदि के साथ स्वयं पान कर रहा है, उसके अविद्यादि क्लेश सब भस्म हो जाते हैं, वह अपने अन्दर के सब महान् खजाने को जिसे वेद ने 'रायः' कहा है, प्राप्त कर लेता है और इषः इच्छा-सिद्धियों को भी प्राप्त कर लेता है। अतः वेद कहता है पहले 'उपयामगृहीतोऽसि' इस पर आचरण करके यमनियम का व्रत धारण करो। तत्पश्चात् अन्तर्यच्छ, भीतर जो प्राणादि, मन, इन्द्रियाँ आदि हैं। उन्हें वश में करो एवं अन्दर प्रवेश करके अन्तर्मुख होओ। अन्तर्मुख होने पर शरीरस्थ सोम की रक्षा करते हुए उनसे अपने मन, प्राण, इन्द्रियों आदि को दिव्य तेज से पूरित कर दो और 'उरूष्यः' केवल शरीर, प्राणादि की पुष्टि ही न करो, अपितु जो अविद्यादि क्लेश हैं, उन्हें योगविद्या के बल से नष्ट कर दो। ऐसा करने पर योगी अपने अन्दर छिपे हुए खजाने और गुप्त शक्तियों को प्राप्त कर लेता है।

अन्तर्मुख वृत्ति से विश्व का ज्ञान

वेद ने इस मन्त्र में अन्तर्यच्छ कहकर अन्तर्मुख होने का उपदेश किया है। अगला मन्त्र योगी को बताता है कि तेरे अन्दर क्या-क्या है :—

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम्।
रसजूर्देवेभिर्वरैः परैश्चान्तर्य्यामे मघवन् मादयस्व॥

(यजु० अ० ७। मं० ५)

हे मघवन् योगी! परमेश्वर ने तेरे अन्दर सूर्य और पृथिवी को

स्थापित किया हुआ है। तू अपने अन्दर के सूर्य को देख। उसमें ध्यान लगाकर तू सूर्य का ज्ञान-विज्ञान प्राप्त कर सकता है। जब तू अपनी सूर्य नाड़ी में संयम करेगा, तो जिस प्रकार से सूर्य के प्रकाशित होने पर सब लोक प्रकाशित हो जाते हैं और उन्हें प्राण प्राप्त होता है, उसी प्रकार तुझे भी सब लोकों का ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। इस स्थिति को योगदर्शन में 'भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'। (विभूतिपाद सू० २६) लिखा है। ब्रह्माण्ड में भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम् ये सप्तलोक या दैवी स्थितियां, अवस्थाएं हैं जिनमें मनुष्य क्रमशः उत्तरोत्तर उच्च स्थिति, दैवी स्थिति को प्राप्त करता जाता है। इसके अतिरिक्त जो लोक या स्थितियाँ हैं, वे निम्न कोटि की हैं। समस्त ब्रह्माण्ड में जीव किसी न किसी स्थिति में रहते हैं। अतः उसका ज्ञान योगी को हो जाता है, क्योंकि परमात्मा ने हमारे देह में सूर्य को अर्थात् कारण समष्टि प्राण रूप सूर्य को स्थापित किया है।

इसी प्रकार उस परमात्मा ने इस शरीर में सूर्य के अतिरिक्त पृथिवी को भी स्थापित किया है। पृथिवी वैदिक साहित्य में 'ध्रुवा पृथिवी' है। अर्थात् ध्रुव का नाम पृथिवी भी है। केन्द्रीय स्थिरत्व एवं उसके आकर्षणानुकर्षण से लोकों की जो विविध गतियाँ हैं, उनका ज्ञान पृथिवी तत्त्व में अपने में संयम, धारणा, ध्यान, समाधि से प्राप्त होता है। योगदर्शन में इसी स्थिति को ध्रुवेतद्गतिज्ञानम्। (विभूतिपाद सू० २८) इन शब्दों में कहा है।

वेद ने पुनः रहस्य का उद्घाटन करने के लिए इस मन्त्र में कहा 'दधामि उर्वन्तरिक्षम्' तेरे अन्दर महान् विस्तृत अन्तरिक्ष को भी स्थापित किया हुआ है। इस अन्तरिक्ष में संयम कर। चन्द्र, नक्षत्र, तारागण आदि सब अन्तरिक्ष के कारण एक-दूसरे से पृथक्-पृथक् तथा अविरोधी रहते हुए विचरण कर रहे हैं। इस महान् अन्तरिक्ष में संयम करो, चन्द्र, नक्षत्र, तरागणों का ज्ञान भी तुम्हें प्राप्त होगा। तेरे घट में सब कुछ है।

तुम्हारी बाह्य दृष्टि इस समस्त ब्रह्माण्ड का दर्शन नहीं कर सकती। परन्तु तुम अपने घट में अन्तर्मुख होकर अन्तर्ज्योति से उस

सबका साक्षात्कार कर सकते हो। आज सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागणों के ज्ञान प्राप्त करने के लिए अरबों रुपये भी अपर्याप्त हैं। परन्तु वेद इन सब के ज्ञान के लिए और इनके दर्शन के लिए उपदेश कर रहा है कि तू बाहर कहाँ भटक रहा है। थोड़ा-सा प्रयत्न कर। सब कुछ अन्दर ही देख ले। योगदर्शन ने अन्तरिक्ष ज्ञान के बारे में लिखा, चन्द्रताराव्यूहज्ञानम्। (विभूतिपाद सूत्र २७) अर्थात् चन्द्र नाड़ी में संयम करने से योगी को चन्द्र तारा, नक्षत्रादि का ज्ञान प्राप्त होता है।

सूर्य और पृथिवी के मध्य बाह्य जगत् में चन्द्रमा का दर्शन होता है। अतः चन्द्र शब्द अन्तरिक्ष स्थानीय होने से वेद ने इसके ज्ञान की प्राप्ति का उपदेश दिया। कारण समष्टि प्राणरूप सूर्य और स्थूल समष्टि रूप पृथिवी के मध्य चन्द्रमा जीव अथवा मन के रूप से चन्द्र-दर्शन का अर्थ जीवात्मा दर्शन है।

वेद ने इस मन्त्र में जीवन के लिए सजूः शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि परमात्मा इसका मित्र है। इस प्रकार का योगी देवेभ्यः, विद्वानों के विद्या को प्राप्त करके अथवा शरीर के अन्दर जो ३३ देवता निवास करते हैं, उनका अपनी योग साधना से ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करके 'अवरैः परैश्च अन्तर्यामे मादयस्व' अपने से जो न्यून स्थिति वाले हैं और जो अपने से अधिक योगैश्वर्य वाले हैं, उनसे 'अन्तर्यामे' योग प्रवृत्ति से अन्तर्मुख होकर बारम्बार उपासना योग में निमग्न होकर आनन्द प्राप्त करके उन सबको भी मादयस्व परमानन्द का प्रसाद वितरित करके प्रसन्न किया कर।

इस प्रकार वेद मन्त्र योगी को केवल अपने ही हितचिन्तन का उपदेश नहीं करता, अपितु सबको उस प्रभु की ओर चलने के लिए प्रेरित करता है।

सिद्धि प्राप्त मन को परमात्मा के अर्पण करें

योग की पूर्वोक्त सिद्धियाँ मन्त्र के संयम से ही प्राप्त होती हैं। उस मन को योग समाधि में स्वाहा करने से दैवी एवं पार्थिव ज्ञान, सिद्धि, शक्तियां प्राप्त होने से योगी परमात्मा का प्रिय, स्वीकरणीय

बन जाता है, इसका उपदेश निम्न मन्त्र में वेद कर रहा है :—

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्यऽ इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य ऽउदानाय त्वा

(यजु० अ० ७ । मं० ६)

हे (सुभव) शोभन ऐश्वर्ययुक्त योगिन् ! तू (स्वाङ्कृतोसि) अनादिकाल से स्वयंसिद्ध है, अतः अपने योग विद्या के पूर्व अनुष्ठान के प्रयत्नों से तू युक्त है। तू (दिव्येभ्यः विश्वेभ्यः देवेभ्यः मरीचिपेभ्यः) शुद्ध, समस्त प्रशस्त गुणों और योग के प्रकाश से युक्त है, इसीलिए (त्वा) तुझको परमात्मा स्वीकार करता है। (पार्थिवेभ्यः त्वाः) पार्थिवादि पंच तत्त्वों एवं पृथिव्यादि लोकों के योग ज्ञान से युक्त होने से परमात्मा तुझे स्वीकार करता है। तू (सूर्याय) सूर्य नाड़ी में संयम करके ज्ञानी एवं तेजस्वी बना है, अतः परमात्मा तुझे स्वीकार करता है। (उदानाय त्वा) उदान का जय करके उच्च स्थिति प्राप्त की है अतः तुझे परमात्मा स्वीकार करता है, क्योंकि इस सब साधना का जो मूल अभ्यास (मनः स्वाहा अष्टु) मन को योगयज्ञ में हुत कर देने का है उसे प्राप्त किया है। अर्थात् जब तक मन को योगयज्ञ में पूर्ण रूप से परमात्मा को अर्पित नहीं कर देते, तब तक परमात्मा उसका वरण नहीं करता। 'यमैवैष वृणुते तेन लभ्यः' यह उपनिषद् उक्ति उसी दशा में चरितार्थ होती है।

परमात्मा द्वारा वरण

यद्यपि योग में अपना संयम-नियम अनुष्ठान काम देता है, परन्तु जब उसे परमात्मा स्वीकार करता है, तो परमात्मा की कृपा की वृष्टि से धर्ममेघ समाधि भी प्राप्त होती है। जब अपना प्रयत्न प्रभु को स्वीकार हो जाता है, तो यही सबसे उच्च आनन्ददायक स्थिति होती है। योग की इस स्थिति का वर्णन वेद का निम्न मन्त्र कर रहा है :—

महाँऽइन्द्रो यऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँऽइव ।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे । (यजु० अ० ७ मं० ४०)

जिस प्रकार से वृष्टि को प्राप्त कर वनस्पतियाँ अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार योगीजन की स्तुतियों से महान् ऐश्वर्य-वान् परमात्मा अपने अनन्त बल से अपूर्व वृष्टि करता है, जिससे योगी पुरुष का योग अत्यन्त वृद्धि एवं पुष्टि को प्राप्त होता है। तब परमात्मा की ओर से यह धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति होती है, जिससे योगी के सब क्लेश दूर हो जाते हैं।

योग से उच्च स्थिति की प्राप्ति

योगी योगयज्ञ द्वारा उत्तरोत्तर उच्च स्थितियों को प्राप्त होता है। इसका वर्णन वेद के निम्न मन्त्र में है :—

पृथिव्या ऽअहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥

(यजु० अ० १७। मं० ६७)

अर्थात् योग के अंगों के अनुष्ठान, संयमादि की साधना से धारणा, ध्यान और समाधि में परिपूर्ण होने पर मैं पृथिवी से अन्त-रिक्ष को प्राप्त होऊं। अन्तरिक्ष में पहुँचने के पश्चात् अन्तरिक्ष से प्रकाशमान सूर्यलोक को चढ़ जाऊँ। सुख देने वाले प्रकाशमान् उस सूर्यलोक से अत्यन्त सुख और ज्ञान के प्रकाश को मैं प्राप्त होऊँ।

जैसा वेद के पूर्व मन्त्रों से बताया गया कि इस शरीर में भी पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ और स्वः लोक हैं, तदनुसार योगी क्रमशः उत्तरोत्तर सूक्ष्म, उन्नत ज्ञान तथा प्रकाशमय एवं आनन्दमय स्थितियों को प्राप्त करता है।

शरीर का पादस्थानीय भाग हो पृथिवी है, जैसा कि पद्भ्यां भूमिः (यजु० अ० ३१। मं० १३) में वर्णित है। अन्तरिक्ष स्थानीय भाग शरीर का मध्य भाग नाभि केन्द्र से कण्ठ तक का है, जैसा कि नाभ्या आसीदन्तरिक्षम् तथा शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत (यजु० अ० ३१। मं० १३) में शिर को द्युस्थानी बताया है। इसी प्रकार स्वर्लोक भी शिर में सहस्रारचक्र है।

मानसिक यज्ञ

वाह्य यज्ञों की क्रियाओं को आन्तरिक योगयज्ञ में आरोपित करने का उपदेश निम्न मन्त्र में है :—

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन। (यजु० अ० १७। मं० ७८)

जिस प्रकार से यज्ञ में घृत की आहुति देते हैं, उसी प्रकार योग-यज्ञ में मन रूपी घृत के साथ चित्तरूपी अग्नि में आहुति प्रदान कर रहा हूँ। मन संकल्प, विकल्प, संशययुक्त रहता है। चित्त निश्चयात्मक स्थिति है। योग के लिए मन का आहुति चित्त को अग्नि में डालकर योगी मन को संकल्प-विकल्पशून्य बनाकर चित्त के रूप में निश्चयात्मक ज्ञान में स्थिर करता है, जिससे वह धारणा, ध्यान, समाधि की स्थिति प्राप्त करता है।

मानस यज्ञ करने वाला योगी मन को जब चित्त में विलीन कर देता है, तो योगदर्शन के शब्दों में 'तस्य प्रशान्तवाहिता वृत्तिः संस्कारात्'। (विभूतिपाद, सूत्र १०) निरोध संस्कार से चित्त की शान्त प्रवाह वाली गति होती है, जिससे चित्त में सम्प्रज्ञात समाधि का परिणाम होने लगता है।

मन और चित्त के इस प्रकार निर्माण हो जाने पर योगी जब अपने मन एवं चित्त को अन्य के मन और चित्त में आहुत कर देता है अर्थात् प्रवेश कर देता है, वह दूसरे के मन एवं चित्त का भी ज्ञान प्राप्त कर लेने की स्थिति में हो जाता है। यही रहस्य योगदर्शन के 'प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्'। (विभूतिपाद सूत्र १९) इस सूत्र में प्रकट किया गया है और इसी चित्त के आश्रय से ही अनेक सिद्धियाँ योगी को प्राप्त होने लगती हैं।

आन्तरिक अग्नियों में यज्ञ

आन्तरिक अग्नियों की साधना के लिए वेद ने योगयज्ञ के अनुष्ठान का उपदेश दिया है। इन अग्नियों का वर्णन करते हुए वेद ने कहा है :—

सप्त ते ऽग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऽऋषयः सप्त धाम प्रियाणि । सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ।।

(यजु० अ० १७ । मं० ७६)

शरीर के अन्दर निवास करने वाली अग्नि की सात समिधाएं हैं, जिनसे यह प्रदीप्त हो रही है। अग्नि की पृथक्-पृथक् समिधाएं होने से उसकी ज्वाला रूपी जिह्वा, रसास्वादन करने की वृत्तियां भी सात प्रकार की हैं। इनके सप्त प्रकार के आश्रय स्थान हैं। सात प्रकार के होतागण इनमें यजन कर रहे हैं। इस कारण सात इसके कारणस्थान हैं।

यद्यपि शरीर में सप्त धातुओं की सात प्रकार की अग्नि है और रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्रादि यही उसकी समिधा हैं। इनकी क्रियाशीलता ही जिह्वा है। इनमें ही अग्नियों का निवास होने से ये इसके प्रिय धाम हैं और ये ही इन अग्नियों की योनि भी हैं और ये ही सप्त होता बनकर एक के बाद दूसरी अग्नि में अपनी आहुति दे रहे हैं।

इसी प्रकार शरीर में सप्त प्राण भी हैं, वे भी इस शरीर में समिधा जिह्वा, ऋषि, होता आदि बनकर कार्य कर रहे हैं। अनेक रूप से इस मन्त्र का स्वरूप शरीरयज्ञ पर घटित होता है। परन्तु योगयज्ञ को विशेष रूप से स्पष्ट करने के लिए शरीर के अन्दर रहस्यपूर्वक निहित सप्त समिधा, सप्तऋषि, सप्त होताओं को घृत बनाकर आहुति देने का निम्न मन्त्र में वर्णन किया है।

(१) आकूतिमग्निं प्रयुज ँ स्वाहा ।
(२) मनो मेधामग्निं प्रयुज ँ स्वाहा ।
(३) चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुज ँ स्वाहा ।
(४) वाचो विधृतिमग्निं प्रयुज ँ स्वाहा ।
(५) प्रजापतये मनवे स्वाहा ।
(६) अग्नये वैश्वानराय स्वाहा ।।

(यजु० अ० ११ । मं० ६६)

अर्थात् योगयज्ञ का अनुष्ठान करने वाले को प्रथम अपनी संकल्प-

रूपी अग्नि को जाग्रत् करना होगा कि मैं इस योगरूपी यज्ञ की अग्नि का अनुष्ठान करूँगा, ऐसी दृढ़ संकल्पमयी भावना से अग्नि को जाग्रत् करके उसमें आहुति देनी चाहिए। उसे प्रबुद्ध करना चाहिए उसके प्रबुद्ध करने पर उसकी विविध प्रकार की ज्वालाएँ प्रकट करनी चाहिएं। सात प्रकार की ज्वालारूप जिह्वा से इस संकल्प में जो विरोधी संकल्प या वृत्तियाँ हैं, उन्हें इस आकूति अग्नि की सप्त ज्वालाओं में सप्त ईंधन के रूप में भस्मीभूत कर देना चाहिए।

इस आरंभिक आकूति अग्नि को नष्ट करने के लिए व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति और अनवस्थितत्वरूपी सात विघ्न प्रारम्भ में होते हैं। भ्रान्तिदर्शक और अलब्धभूमिकत्व ये दो विघ्न तो आगे उपस्थित होते हैं। अतः इन सातों को समिधा बनाकर उनको निःशेष कर देना चाहिए। व्याधि आदि अन्तरायों को भस्म करने के लिए आकूति अग्नि को भी सात प्रकार की ज्वालाओं से नष्ट करना होगा। सबके लिए एक समान तेज की आवश्यकता नहीं है। पृथक्-पृथक् बल व तेज (Voltage) का प्रयोग करना पड़ेगा।

यह प्रथम आकूति अग्नि प्राणों से सम्बन्धित है, अतः प्राणों को योग यज्ञ से सम्बन्धित करने के लिए स्वाहा अर्थात् प्रयुक्त करे। अर्थात् प्राणों को संकल्प में, मन के संकल्प विकल्पों को मेधारूपी अग्नि में, चित्त को प्राप्त ज्ञान की अग्नि में, वाणी को विधृति धारणारूपी अग्नि में, प्रजापति वृत्ति, मन्वादि कालवृत्ति और वैश्वानरवृत्ति को योगाग्नि में प्रयुक्त करना चाहिए।

इस प्रकार मानस यज्ञ का योगी योगयज्ञ करता है और वह सातें अग्नियों का उनकी समिधाओं का, उनके ऋषियों का, उनके स्थानों का, उनकी जिह्वा का और उनके योनियों का क्रमशः अन्वेषण करके ज्ञान प्राप्त करता है तथा किस अग्नि में कौन-सी समिधा की आहुति देनी है, किस होता द्वारा किस स्थान में देनी है, यह सब ज्ञान प्राप्त करके अपने योगविघ्नों को दूर कर उन्नति प्राप्त करता है।

जब योगी इस प्रकार योगयुक्त होता है,

सं ते मनो मनसः सं प्राणः प्राणेन गच्छताम्।

हे योगी, तेरा मन तेरे गुरु के मन के अनुसार और तेरा प्राण भी

उसके अनुकूल गति करे अथवा साधक का मन और प्राण दिव्य मन और प्राण के साथ संयुक्त हो। इस प्रकार योगी अपने साधना के गुरु के सान्निध्य से या अपने अभ्यास से प्राण और मन को दिव्य बना सकता है।

प्राणों की साधना से ज्ञान का उदय

प्राणायामादि द्वारा सत्यज्ञान की ज्योति का उदय होता है और अज्ञानान्धकार का नाश होता है। इस ज्योति के उदय से सत्-असत् का, सूक्ष्म-स्थूल का, संभूति-असंभूति का, विद्या और अविद्या का, प्रकृति और पुरुष का, ब्रह्म और माया का अर्थात् उभय पक्ष का ज्ञान योगी को होता है। योगदर्शन में इस स्थिति को निम्न सूत्रों से वर्णित किया है।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। (साधनपाद सूत्र ५२)
योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः॥
(साधनपाद सूत्र २८)

वेद ने इसी मार्ग का दर्शन निम्न मन्त्र में किया है :—

प्राणा शिशुर्महीनां॑ हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता॥

(सामवेद मं० १०१३)

अपूर्व अद्भुत् महान् शक्तियों का शिशुरूप प्राण परम सत्य की किरण, ज्योति या प्रकाश को साधक में प्रेरित करके समस्त प्रिय, ज्ञातव्य पदार्थों को ज्ञान के उभय पक्षों के दर्शन के लिए व्याप्त कर लेता है।

संसार में जितने भी पदार्थ हैं, उनका दर्शन प्राण की शक्ति से ही हो रहा है। सामान्यरूप से जो भी ज्ञान प्राप्त होता है, वह ऐन्द्रियिक ज्ञान है। यह ज्ञान प्रत्यक्ष पर आश्रित है। प्रत्यक्ष के अतिरिक्त वस्तु का परोक्ष ज्ञान भी है, जो इन्द्रियातीत है। यह परोक्ष ज्ञान प्राण एवं मन की विशेष स्थितियों से होता है। अतः प्राण की सामान्य प्रवाहित धारा के आश्रित ज्ञान और प्राण की विशिष्ट धारा के आश्रित परोक्ष ज्ञान या अन्तर्मुख वृत्तिपूर्वक ज्ञान ये प्राण

के प्रकाश के द्विविध क्षेत्र हैं, जिनका मन्त्र में संकेत है। प्राणायाम के अभ्यास से अन्तर्मुख क्षेत्र का और बाह्य क्षेत्र का सत्य ज्ञान प्रकट होता है अर्थात् नित्य ज्ञान में प्रवेश होता है।

पर्वतों एवं नदी संगमों का महत्त्व

योग साधन में पर्वतों का अत्यन्त महत्त्व है। इस विस्तृत भू-भाग पर पर्वतों के शिखर, पर्वतों की गुफाएँ, पर्वतों के निकट का प्रदेश, नदियों का संगम योगयज्ञ के अनुकल स्थान है। योगयज्ञ का अनुष्ठाता विप्र ऐसे प्रदेशों को शरीर की वेदी में बुद्धि द्वारा यथा-स्थान आरोपित करके तथा उन्हें सुनिश्चित करके योगयज्ञ को अपने में उत्पन्न करते हैं, जैसा कि निम्न मन्त्र में उपदेश है।

उपह्वरे गिरीणाँ सङ्गमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो ऽअजायत॥

(यजुर्वेद अ० २६। मं० १५)

अर्थात् योगयज्ञ का अनुष्ठाता पर्वतों की उपत्यकाओं, नदी के संगम में जब अपनी साधना प्रारम्भ करता है, तो वह विप्र, मेधावी-जन योगयज्ञ के लिए श्रद्धारूप सोम एवं आत्मज्ञानरूपी ज्योति को प्रकट करता है।

यद्यपि पर्वत की उपत्यकाएँ, पर्वत, नदी, संगम आदि स्थान इस भूमि पर बाह्य प्रदेश में हैं और उन स्थानों की दिव्यता से परमात्मा की रचना के प्रति योगी का मन आकृष्ट होकर अन्तर्मुख होने से परमात्मा की प्राप्ति में लग जाता है। परन्तु अन्तर्मुख होकर जब वह शरीर के अन्दर स्थित पर्वतों की उपत्यकाओं से उनके शिखरों पर चढ़ता जाता है तो पूर्व मन्त्र में वर्णित स्थितियों को प्राप्त करता है। इन पर्वतों से अनेक नदियों का उद्गम है। अर्थात् इन मेरुदण्ड के सुमेरुओं से अनेक नाड़ियाँ निकलती हैं जिनमें सुषुम्णा का प्रवाह अन्य नाड़ियों रूपी नदियों में प्रवाहित होता है और उन नाड़ियों के जो संगमरूप समूह गुच्छे हैं, वे नाड़िकेन्द्र योगविद्या में कमल चक्र आदि संज्ञक हैं। उन शरीरान्तर्गत संगम में तथा पर्वतों में जब योगी अपने मन एवं प्राण को प्रवेश करता है तो उसे अद्भुत मेधा प्रकट

होती है।

संगम में स्नान से मोक्ष प्राप्ति

इसी में से एक स्थिति को एक मन्त्र में निम्न प्रकार कहा है :—

सितासिते सरिते यत्र संगथे तत्राऽऽप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।
ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते ॥

(ऋग्वेद परिशिष्ट)

श्वेतवर्ण एवं कृष्णवर्ण की नदियाँ जहाँ मिलती हैं उसमें डुबकी लगाने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जो वीर पुरुष ऐसे संगम में अपने शरीर को त्यागते हैं वे विद्वान् मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

संगम का रहस्य

बाह्य कर्मकाण्ड आन्तरिक यज्ञ का ही रूप है। शरीर के भीतर श्वेत एवं कृष्णवर्ण की नदियाँ इडा और पिंगला, सूर्य एवं चन्द्र नाड़ियाँ हैं, जिन से प्राण की धारा शरीर में प्रवाहित होती रहती है। इन नदियों का संगम दोनों नेत्रों के मध्य के भाग में नासिका द्वार के ऊपर ही है। यहाँ पर ध्यान रूपी डुबकी लगाने से योगी को स्वर्ग की प्राप्ति होती है और जो कोई योगीजन इस संगम के मध्य से प्राणों को सहस्रारचक्र में प्रवेश कराके प्राण त्यागता है, उसे मोक्षपद प्राप्त होता है।

वास्तविक स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति आन्तरिक साधना के संगम स्थान एवं सुमेरु पर आरोहण से होती है। इसी रहस्य को हृदयंगम करने के लिए लोग श्वेत एवं कृष्ण वर्ण की जलधारा वाली गंगा एवं यमुना नदियों के संगम त्रिवेणी में मोक्ष के लिए स्नान करने जाते हैं। हरिद्वार, बदरीनाथ, केदारनाथ, मानसरोवर आदि पर्वतों के स्थानों, नदियों के उद्गम स्थानों, गंगोत्री, यमुनोत्री, अमरकंटकादि स्थानों पर जाते हैं।

परन्तु वास्तव में इनका फल अन्दर की साधना से है। अतः ज्ञानी जन इन सब स्थानों का अन्दर में ही निश्चय करके उन-उन स्थानों में ध्यान करते हैं और उनके फलों को प्राप्त करते हैं।

जीवन पर्यन्त योगयज्ञ

योगी का ऐसा यज्ञ जीवन में चलता रहता है जैसा कि वेद ने कहा है—

ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः।
संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परि पातु नः॥

(यजु० अ० २६। मं० १४)

हे योगी ! तेरा जो योगयज्ञ है उसे ऋतुएं विस्तृत करें। चैत्रादि मास तेरे योगयज्ञ की हवि की रक्षा करें। योगी के यज्ञ को संवत्सर-वर्ष भी धारण करे। इस प्रकार योगी के यज्ञ से हमारे प्रजाओं की रक्षा होती है।

योगी का सर्वतोधार यज्ञ

योगियों के हमारे मध्य में रहने से हमारी सन्तानों की अनेक प्रकार से रक्षा होती है। उन्हें सन्मार्ग पर चलने का उपदेश और क्रियात्मक पथ प्रदर्शन उनसे ही प्राप्त होता है।

जो इस प्रकार योगयज्ञ में लगे रहते हैं वे

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आऽद्याᳪं रोहन्ति रोदसी।
यज्ञं ये विश्वतोधारᳪं सु विद्वाᳪं सो वितेनिरे॥

(यजु० अ० १७। मं० ६८)

उत्तम विद्वान् अपने शरीर रूपी योगयज्ञ से समस्त विश्व में जिसकी ज्ञानधाराएँ प्रस्फुटित हो रही हैं एवं विश्व का पालन-पोषण रूप कार्य परमात्मा के जिन नियमों से होता है, ऐसे विश्वतोधार यज्ञ को विशेष रूप से करते हैं। उससे वे योगीजन स्वर्ग को, आदित्य-मण्डल को, दिव्य तेज या दिव्य ज्योति एवं मोक्ष को प्राप्त करते हैं। समस्त सांसारिक कामनाओं से रहित होकर वे योगीजन जरा मृत्यु, शोकादि से रहित द्युलोक को प्राप्त होते हैं।

इस मन्त्र में द्युलोक, स्वर्ग आदि स्थानों का जो वर्णन है वह भी आध्यात्मिक है। शरीर में शिरभाग द्युस्थानीय है। वहीं स्वर्ग है। योगी इसी स्वर्ग में बैठकर आनन्द को प्राप्ति करता है। वेद ने

योग यज्ञ में प्राण के मार्ग को अमृत का माग कहा है।

अमृत मार्ग

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था ऽअमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि ॥

(यजु० अ० १९। मं० ९०)

इस मन्त्र में नासिका में पराक्रम, बल, जीवन के लिए अवि और मेष की स्थिति से प्राण का अमृत मार्ग है, यह बताया है। प्राण के मार्ग में एक ओर अवि और दूसरी ओर मेप शक्ति है। अवि का अर्थ सूर्य है और मेष ज्योतिश्चक्र का एक अंश है। इस प्रकार मेष से सूर्य की अंश रूप ज्योति से प्रकाशित चन्द्र की स्थिति है। अर्थात् नासिका में एक ओर तो सूर्य शक्ति युक्त प्राण का प्रवाह चलता है और दूसरी तरफ चन्द्रमा शक्तियुक्त प्राण का प्रवाह चलता है। वेद में जो अवि और मेप प्राण हैं वे ही योग के तन्त्र-शास्त्रों में सूर्य चन्द्र स्वर या सूर्य चन्द्र नाड़ियाँ हैं। इन्हीं को योग-तन्त्र में यमुना और गंगा कहा है।

प्रयागराज

गंगा-यमुना के संगम में तीसरी नदी अदृष्ट रूप से सरस्वती मानी जाती है, अतः त्रिवेणी का संगम प्रयागराज तीर्थ है। शरीर में इडा नाड़ी ही गंगा है, चन्द्र है और पिगंला नाड़ी यमुना है, सूर्य है। इनके मध्य भाग में सुषुम्णा है, जिसे सरस्वती कहा जाता है। इन तीनों का संगम आज्ञाचक्र में दोनों भुवों के मध्य में है, अतः यह त्रिवेणी स्थान है, प्रयागराज है। इस प्रयागराज में ध्यान या समाधि लगाने से योगी के पुण्यों का उदय होता है और मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। प्रयाग का तात्पर्य है जिसमें विशेप रूप से यज्ञ होते हैं, उनमें भी जो मूर्धन्य, श्रेष्ठ स्थान है, वह प्रयागराज संज्ञक है। अतः ध्यान का—योगयज्ञ का यह आज्ञाचक्र उत्तम स्थान है।

मूर्धा में ज्योति का दर्शन

समाधिमार्ग से योगी अपने शरीर के द्युस्थानी शिर भाग में प्राण को ले जाकर परमात्मा का दर्शन प्राप्त करते हैं। वेद इसे मन्त्र में निम्न प्रकार वर्णित कर रहा है—

मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत ऽआ जातमग्निम्।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः॥

(यजु० अ० ७। मं० २४)

योगी के शरीर की इन्द्रियाँ देव रूप हो जाने से वे जो इस शरीर में यज्ञ करती हैं, उनसे, प्राण की आहुति से ब्रह्म ज्ञान की अग्नि को शिर के मूर्द्धा स्थान में, उसी को पात्र बनाकर एवं उसको अपना मुख रूप बनाकर प्रकट करती हैं। अर्थात् उस ब्रह्मज्ञान को शिर में इन्द्रियादि देव निष्पन्न करके अमृत भाग को प्राप्त करते हैं। यह अग्नि जो शिर के भी मूर्द्धा सहस्रारचक्र में देदीप्यमान होती है, वह कवि, सम्राट्, अतिथि आदि विशेषणयुक्त है।

ब्रह्म का गुहा में दर्शन

योगयुक्त, विद्वान्, वीर पुरुष इस ज्योति का दर्शन करता है। इसका वर्णन वेद की निम्न ऋचा कर रही है :—

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदꣳ सं च वि चैति सर्वꣳ स ओतः प्रोतश्च
विभूः प्रजासु॥

(यजु० अ० ३२ मं० ८)

योगयुक्त विद्वान् शरीर की गुहाओं में विभिन्न शक्तियों से युक्त उस तत् पदवाच्य ब्रह्म को देखता है अर्थात् उसको जानता है। शरीर की गुहाओं में वह सब के अन्दर सदा जानने योग्य स्थिति में दृश्यरूप में विराजमान है। वही वास्तव में अनादि, सर्वशक्तिमान् सर्वश्रेष्ठ शक्ति है, जिसके अन्दर इसी विशाल ब्रह्माण्ड के पदार्थ एक दूसरे से सन्निविष्ट होकर एक महान् सृष्टियज्ञ का संचालन कर रहे हैं। उसी महतो महीयान् के गर्भ में यह विशाल ब्रह्माण्ड आश्रय

प्राप्त किए हुए है। प्रलयावस्था में भी उसी में समाविष्ट हो जाता है। वही सर्व व्यापक परब्रह्म सर्वत्र ओतप्रोत है।

ब्रह्मज्ञानी की स्थिति

ब्रह्मज्ञानी उस स्थिति में ब्रह्म का ही प्रवचन करता है, जैसा कि निम्न वेद मन्त्र में कहा है :

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत्॥

(यजु० अ० ३२। मं० ९)

वेदवाणी का धारण एवं चिन्तन करने वाला, वेदवेत्ता ब्रह्मज्ञानी योगाभ्यास रत, समाधि निर्धूतमल चेतस विद्वान् उस ब्रह्म का उपदेश करता है, जो गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणं ब्रह्म है। जो अमृतरूप, शाश्वत एवं अनश्वर है तथा जो अत्यन्त गूढ़ अप्रकट होते हुए भी संसार की स्थिति रचना एवं प्रलय आदि का कर्त्ता है, जिसके तीन स्वरूपों का दर्शन ब्रह्मज्ञानी ही कर पाते हैं। वह इस विश्व गुहा में तथा शरीर में छिपा हुआ है। उसी के द्वारा सर्ग, स्थिति, प्रलय, ऋग्यजुः साम, भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान आदि कार्य होते हैं। इन सबका कर्त्ता होते हुए भी वह गुप्त ही रहता है। यह स्थिति उसी दशा में हो पाती है, जब वह ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' हो जाता है। उसी को मन्त्र में 'स पितुः पितासत्' पिता का भी पिता, 'गुरु का भी गुरु' 'स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' तक पहुँच जाता है। और उस दशा में—

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः॥

(यजु० अ० १३। मं० ५)

ब्रह्म ज्योति या ब्रह्मानन्द रस उस समय उस योगी के मूर्द्धारूपी द्युलोक, अधोभागरूपी पृथिवीलोक और कारणरूप नाभि प्रदेश तथा अन्तरिक्ष स्थानीय पूर्ण मध्यभाग को अपनी दीप्ति एवं आनन्दरस से व्याप्त एवं सिंचित कर देता है। यह स्थिति आनन्द की होती है। जब सब ओर से सब स्थानों में इस शरीर रूपी ब्रह्माण्ड में उस तेजो-

मय परम पुरुष का उदय शरीर के पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर. अधः ऊर्ध्व एवं मध्य इन सातों दिशाओं से होता है और उसका आनन्द रस सब ओर से प्राप्त होता है तथा उसमें योगी की ध्यान रूपी आहुति पड़ती जाती है। और उससे उस द्रप्सः—आनन्द एवं आदित्य की भी सप्त दिशा रूप होताओं से उस योगी में आहुति पड़ती रहती है। इस प्रकार योगी की समाधि का आनन्द बढ़ता ही चला जाता है। उस समय वह योगी कहता है :—

ब्रह्मनिष्ठ का उपदेश

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता ऽआपः स प्रजापतिः ।।
एषो ह देवः प्रादशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स ऽउ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।।

(यजु० अ० ३२ । मं० १, ४)

जिस सच्चिदानन्दमय ब्रह्म का मैं अपने अन्दर दर्शन कर रहा हूं, वह सब का कारण ब्रह्म है, वही कार्य जगत् की अग्नि में है, वही इस आदित्य में है, वही वायुरूप में बह रहा है, वही चन्द्रमारूप से आह्लाददायक रूप में प्रकाशित हो रहा है। वही परम शुद्ध, सर्वत्र व्याप्त, सर्वतो महान् और सब प्रजाओं का स्वामी है।

यही देव अखिल ब्रह्माण्ड में अनेक रूपों में, सब दिशा-विदिशाओं में अनुकूलता से व्याप्त होकर अन्तःकरण के बीच प्रथम कल्प के आदि में भी प्रसिद्ध रूप से प्रकटता को प्राप्त हुआ। पूर्व योगियों ने भी इसी को इसी प्रकार अनुभूत किया था और आगे भी कल्पों में यह इसी प्रकार प्रसिद्धि को प्राप्त होगा। हे मनुष्यो ! यह ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त हो रहा है और यह सर्वतोमुख रूप अर्थात् मुखादि अवयवों की शक्ति उसकी सर्वत्र है। अतः वही उपासनीय है।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।

(यजु० अ० ३२ । मं० २)

उस महामहिम, महाप्रथितयशवान् की कोई प्रतिमा नहीं है।

हम उसका प्रतिरूप कैसे बना सकते हैं? यदि हम उसकी प्रतिमा बना लेते हैं तो वह हमारी ज्ञान परिधि, कर्म परिधि एवं काल परिधि में आ जाता है। परन्तु वह तो हमारी सब परिधियों से भी बाहर है। अतः उसकी प्रतिमा नहीं हो सकती। काल उसे बांध नहीं सकता, क्योंकि—

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्॥

(यजु० अ० ३२। मं० २)

हे मनुष्यो! जिस विशेष प्रकाशमान पूर्ण परमात्मा से सब निमेष कला, काष्ठादि काल के अवयव उत्पन्न होते हैं, उस परमात्मा को कोई भी ऊपर, मध्य या इतस्ततः दिशाओं से ग्रहण नहीं कर सकता। अतः उस कालातीत को प्रतिमारूप से कालबद्ध करना भी संगत नहीं होता। वह तो—

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश॥

(यजु० अ० ३२। मं० ११)

सब प्राणियों को सब ओर से व्याप्त होके, पृथिवी तथा सूर्यादि लोकों को सब ओर से व्याप्त होके और ऊपर-नीचे सब आग्नेयादि उपदिशा तथा पूर्वादि दिशाओं को सब ओर से व्याप्त होके सत्य के स्वरूप वा अधिष्ठान को सम्मुखता से सम्यक् प्रवेश करता है। उसकी प्रथम प्रकट हुई वेदवाणी का अध्ययन कर सत् स्वरूप परमात्मा को आत्मा से प्राप्त होओ।

इसी प्रकार उस ब्रह्म के लिए वेद निम्न मन्त्रों में वर्णन कर रहा है:—

परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्॥

(यजु० अ० ३२। मं० १२)

वह परमेश्वर द्यावापृथिवी में व्याप्त होकर, लोकलोकान्तरों में व्याप्त होकर, दिग्दिगन्तरों में व्याप्त होकर, आदित्यमण्डल में

व्याप्त होकर सत्य तत्त्व (प्रकृति) के विस्तृत तन्तुजाल को ग्रथित कर उसे देखता है। वह उसका स्वामी है तथा वही उसका स्वामी था और वही स्वामी रहेगा भी।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(यजु० अ० २५। मं० १०)

सूर्यादि ज्योतिष्पिण्ड उसके अन्दर गर्भवत् हैं, वही जगदीश्वर इस सृष्टि के पूर्व वर्त्तमान था। वही उत्पन्न हुए जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एवं पालनकर्त्ता है। उसने अन्तरिक्ष को, द्युलोक को तथा इस पृथिवी लोक को धारण किया हुआ है। अतएव उस प्रजापति, सुखस्वरूप परमात्मा के लिए हम विशेष भक्तिपूर्वक आत्मसमर्पण द्वारा उपासना किया करें।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
यऽ ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(यजु० अ० २५। म० ११)

जो परमेश्वर जीवन एवं गति धारण करने वाले जगत् का महिमा से एकमात्र राजा है, जो परमेश्वर इन द्विपाद तथा चतुष्पाद आदि सबका स्वामी है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर के लिए हम विशेष भक्तिपूर्वक आत्म-समर्पण द्वारा उपासना करें।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(यजु० अ० २५। मं० १२)

जिसकी महिमा को अपनी महिमा से हिमवाले पर्वत तथा ये नदी सहित समुद्र भी वर्णन करते हैं, इसी प्रकार जिसकी ये दिशाएँ और उपदिशाएँ भुजाओं के तुल्य हैं, उस देव प्रजापति की हम अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भक्ति करें।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(यजु० अ० २५ मं० १३)

जो आत्मज्ञान एवं बल का देने वाला है, सकल विश्व जिसकी प्रशंसा करता है, जिसके शासन में सब दिव्य शक्तियां हैं, जिसका आश्रय अमृत और मृत्यु है, उस देव प्रजापति की हम आत्मसमर्पण द्वारा उपासना करते हैं।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० अ० ३२। मं० ६)

जिसने द्युलोक को तेजोमय किया तथा पृथिवी को दृढ़ किया, जिसने आदित्य मण्डल धारण किया हुआ है, जिसने मोक्ष को धारण किया है, जो अन्तरिक्ष में लोकलोकान्तरों का निर्माण करने वाला है, उस प्रजापति परमेश्वर की हम भक्तिभाव से उपासना करें।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० अ० ३२। मं० ७)

परस्पर आह्वान करती हुई रक्षणा क्रिया से परस्पर बंधी हुई तथा ईश्वरीय विज्ञान से परस्पर कंपित होती हुई द्यावा पृथिवी जिसे लक्ष्य करती है, जिसके अधिकार में सूर्य उदित होकर भासित हो रहा है, उस प्रजापति की हम भक्ति भावना से उपासना करें।

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवाना ँ समवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० अ० २७। मं० २५)

जब महती जल तन्मात्राएँ या परमाणु धाराएँ बीजरूप जगत् कारण को धारण करती हुई, अग्निपुंज को प्रकट करती हुई संसार में व्यक्त रूप में आईं, तब देवों में एक प्राणस्वरूप जगदीश्वर वर्त्तमान था। उस सुखस्वरूप प्रजापति देव की हम भक्तिभाव से उपासना करें।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देवऽएक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० अ० २७। मं० २६)

और जो जगदीश्वर अपनी महिमा से बल को धारण करता हुआ तथा सृष्टि यज्ञ को व्यक्त करता हुआ जल तन्मात्राओं या परमाणुव्याप्तियों को साक्षी रूप से देखता है। जो देवों में सर्वोपरि विराजमान है उस सुख स्वरूप प्रजापति देव की हम भक्ति भाव से उपासना करें।

मा मा हिँसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवँ सत्यधर्मा व्यानट्। यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० अ० १२। मं० १०२)

जो ईश्वर भूलोक का उत्पन्न करने वाला है और जो सनातन नियमों वाला द्युलोक को व्याप्त करता है और अग्नि, जल, वायु एवं चन्द्रादि लोकों को जिसने उत्पन्न किया है, उस दिव्य गुणयुक्त प्रजापति को हम भक्तिभाव से उपासना करते हैं।

इस प्रकार अनेक मन्त्रों में उस परमात्मा के स्वरूप का वर्णन वेद में किया गया है, जिसे परमात्मा सृष्टि एवं जीव से भी पूर्व, सृष्टि का कर्त्ता, सृष्टि एवं जीव का भी स्वामी, सर्वत्र व्यापक, सर्व रचयिता, सर्वद्रष्टा उपास्य एवं प्राप्तव्य निर्धारित किया गया है। अतः परमात्मा की प्राप्ति के लिए हम सब को योग यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए। यदि हम अपने जीवन में योग यज्ञ द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार नहीं करेंगे तो—'न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः'—महान् विनाश के पथ पर चलते हुए दुःख सागर में ही गोते लगाते रहेंगे और आत्म ज्ञान से विमुख रहकर घोर अन्धकार में अन्धे के समान भटकते रहेंगे।

—:०:—

जन-ज्ञान
(मासिक)
नई दिल्ली-५

जून १९७२

रजिस्टर्ड नं०
D-1631

अलवर आर्य महासम्मेलन में जन-ज्ञान-प्रकाशन के वितरण केन्द्र का निरीक्षण करते हुए अलवर के जिलाधीश। साथ में श्री बालदिवाकर हंस भी खड़े हैं और दयानन्द संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्रनाथ जिलाधीश महोदय को सत्यार्थ-प्रकाश भेंट कर रहे हैं— संपादक

प्रकाशक एवं सम्पादक श्रीमती पण्डिता राकेश रानी द्वारा
सैनी प्रिण्टर्स, देहली-६ में मुद्रित

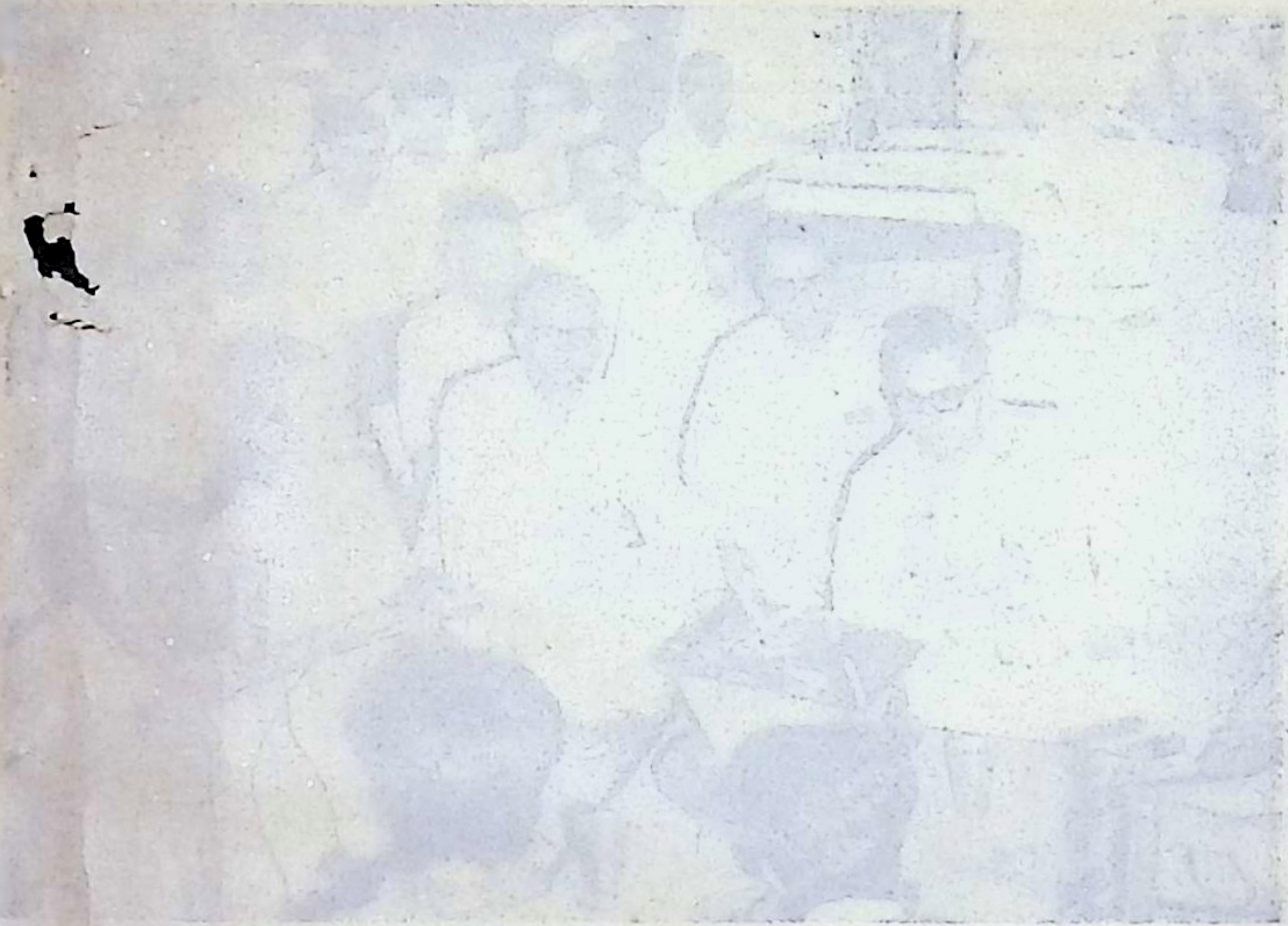

महाविद्यालय ज्वालापुर के वार्षिकोत्सव पर दीक्षान्त भाषण के अवसर का एक चित्र । उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्य मंत्री श्री प्रेमचन्द्र शर्मा और महाविद्यालय के प्रधान सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री क्षेमचन्द्र सुमन व आर्य नेतागण साथ बैठे हैं ।

★